Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ya Samaj Foundation Chennai a

जन संघ स्मारिका १९६९

C.K.V
LIB
HARIDWA

Domain. Gurukul Kangri Collec

028895

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन संघ

स्मारिका

RT-01290
Acc. No. 078895

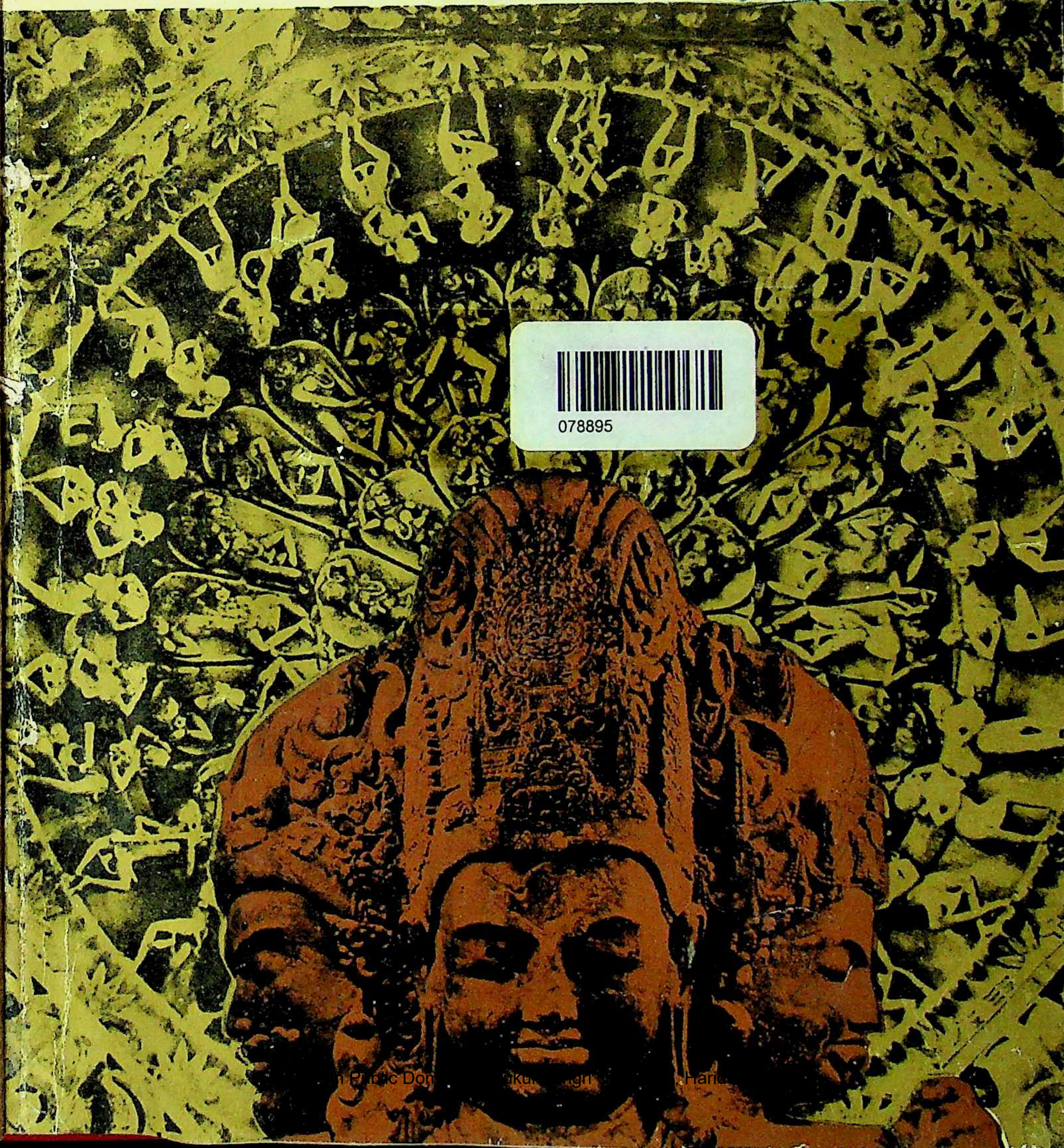

078895

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Serving Varied Needs

N R C Rayon yarn for the textile industry

N R C Rayon tyre cord for the tyre industry

N R C Process chemicals for numerous industries

While maintaining High Standard

Through constant quality and process control and extensive continuing research.

The National Rayon Corporation Ltd.

MANAGING AGENTS : **CHINAI & CO. PRIVATE LTD. BOMBAY**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना एवं आव्हान

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा
अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमानाः
वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥
(अथर्व० १२।१।६२)

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं उदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥
(अथर्व० ११।१०।१)

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत
संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्राम संजित्म
यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥
(अथर्व० ११।१२।२६)

● हे पृथ्वी ! (हे मेरे देश) तुझसे उत्पन्न हुए हम सब लोग आरोग्य-सम्पन्न, क्षयादि रोगरहित और पूर्णायुषी होकर तेरे ऊपर सर्वस्व को भी न्योछावर करने वाले हों।

● ठो, तैयार होओ, हे उदार लोगो एवं दूसरे रक्षक-गणों ! अपने-अपने झण्डों के साथ शत्रुओं पर चढ़ जाओ ।

● हे मित्रो ! तुम सब साक्षात् देव-गण हो और उन सब देवों के भी तुम स्वामी हो । उठो और तैयार होओ और इस युद्ध में विजय प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार लोकों को प्राप्त करो ।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

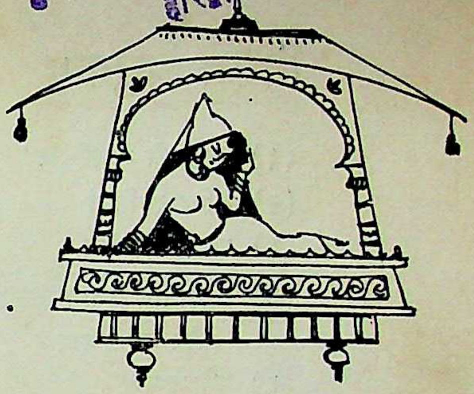

भारतीय जनसंघ

के

पन्द्रहवें वार्षिक अधिवेशन

के

अवसर पर प्रकाशित

अधिवेशन स्थल—बम्बई

(दीनदयाल उपाध्याय नगर)

१३, १४, १५ बैशाख २०२६ वि० तदनुसार
२५, २६, २७ अप्रैल, १९६९ ई०

मुद्रक : नवचेतन प्रेस (प्रा०) लि० (लीज़िज़ आफ़ अर्जुन प्रेस) नया बाजार दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय अनुक्रम

(१)	बम्बई से बम्बई तक		३
(२)	अमिट स्मृतियां		५
(३)	पथ और पाथेय		२९
(४)	मध्यावधि चुनाव और उसके बाद	—श्री जगदीश प्रसाद माथुर	४६
(५)	नये अध्यक्ष		५०
(६)	विदेशी पूंजी और भिखमंगों की योजना	—डा० भाई महावीर	५४
(७)	महान भारत ही हमारा लक्ष्य	—श्री के० र० मलकानी	५७
(८)	? उत्तर	—श्री अटल बिहारी वाजपेयी	६१
(९)	दिल्ली में जनसंघ	—श्री मदनलाल खुराना	६५
(१०)	केरल में लोकतांत्रिक विकल्प : भारतीय जनसंघ	—श्री पी० परमेश्वरन्	७३
(११)	भारत की प्रतिरक्षा नीति	—मेजर रणजीतसिंह	८१
(१२)	साम्प्रदायिकता समस्या समाधान	—श्री बलराज मधोक	८७
(१३)	सार्वजनिक क्षेत्र में बिगड़ता प्रबन्ध : सुधार के उपाय	—श्री स्वतंत्रसिंह कोठारी	९५
(१४)	सुरक्षा : आणविक अस्त्र व आर्थिक विकास	—श्री सुब्रह्मण्यम स्वामी	९९
(१५)	भारतीय मजदूर संघ : एक प्रकाश स्तम्भ	—एक श्रम समीक्षक	११७
(१६)	भारत और राष्ट्रमण्डल	—डा० गिरिजा के० मुखर्जी	१२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रैल १९६९

प्रधान सम्पादक
सुन्दरसिंह भण्डारी

सम्पादक
रत्नसिंह शाण्डिल्य

प्रबन्ध सम्पादक
जगदीशप्रसाद माथुर

सम्पादकीय

बम्बई से बम्बई तक

भारतीय जनसंघ का जन्म १९५१ में हुआ था। जन्म के दो वर्ष के भीतर ही दल को अपने संस्थापक-प्रधान डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के निधन का वज्राघात सहना पड़ा। भारत की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए डा० मुखर्जी श्रीनगर में शहीद हुए। उनके बलिदान के बाद १९५४ में जनसंघ का दूसरा वार्षिक सम्मेलन बम्बई में हुआ था। देश के कोने-कोने से जनसंघ के कार्यकर्ता आंखों में नमी और हृदय में अपने प्राणप्रिय नेता के अधूरे कार्य को पूरा करने का दृढ़ संकल्प लेकर यहां एकत्र हुए थे।

आज जब हम पुन: बम्बई में मिल रहे हैं, गत १५ वर्ष का जनसंघ का जीवन हमारी आंखों के आगे चलचित्र की भांति घूम जाता है। इस १५ वर्ष के कालखण्ड को हम जनसंघ की जययात्रा का नाम दे सकते हैं। इस जययात्रा में हमें खून से खेलना पड़ा है, अंगारों पर चलना पड़ा है, पसीने से अपना पथ सींचना पड़ा है और समय-समय पर आंसुओं की अंजलि भरकर, दुर्भाग्य के देवता के द्वार पर अर्घ्य देने के लिए विवश होना पड़ा है। किन्तु, अपनी इस जययात्रा में हम न तो कभी थके हैं और न कहीं रुके हैं। हाथ में राष्ट्रवाद की ध्वजा धारण कर, ध्येय के पथ पर, हम निरन्तर अग्रसर होते रहे हैं। इस पथ में उतार-चढ़ाव आये में, आशा और निराशा के क्षणों ने हमें पुलकित और चिन्तित किया है, किन्तु हमारी यात्रा अनवरत चलती रही है।

गत १५ वर्ष की सतत साधना, प्रखर ध्येय निष्ठा, संगठन कुशलता तथा राजनीतिक सूझ-बूझ का ही यह परिणाम है कि भारतीय जनसंघ आज एक महान् राष्ट्रवादी शक्ति के रूप में राष्ट्रीय रंगमंच पर अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहा है। सभी प्रदेशों में जनसंघ की शाखाएं फैली हुई हैं। भारतीय समाज के सभी अंग हमारे स्वस्थ स्पर्श की अनुभूति कर रहे हैं।

आज देश दो युगों की संधिस्थली में खड़ा है। एक युग मरणासन्न है, किन्तु दूसरा जन्म नहीं ले पा रहा है। कांग्रेस जिस गति से बिखर रही है, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति से उसका एक राष्ट्रवादी तथा लोकतान्त्रिक विकल्प नहीं उभर रहा है। राष्ट्र विरोधी तथा अलोकतान्त्रिक शक्तियां इस परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील हैं। हमें उनकी कलई खोलनी है, उनसे लड़ना है और उन्हें परास्त करना है। इसके लिए अभाव और अन्याय के विरुद्ध अपने संघर्ष में हमें तीव्रता लानी होगी। आर्थिक विषमता और सामाजिक भेद-भाव के विरुद्ध जम कर मोर्चा लेना होगा। शताब्दियों से दलित और पीड़ित जनों के लिए समता और गरिमा के जीवन की रचना करनी होगी।

समूचा भारत हमारी निष्ठाओं का केन्द्र और हमारा कार्यक्षेत्र है। भारत की ५२ करोड़ जनता हमारा आराध्य है। हमें अपनी स्वाधीनता को अमर बनाना है, राष्ट्रीय अखण्डता को अक्षुण्ण रखना है और विश्व में स्वाभिमान और सम्मान के साथ जीवित रहना है। इसके लिए हमें भारत को एक सुदृढ़, शक्तिशाली और समृद्ध राष्ट्र बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो साधन आवश्यक होगा, हम अपनायेंगे, जो नीति उपयोगी होगी, उसका अवलंबन करेंगे, जो कार्यक्रम हितावह होगा, उसका निर्धारण तथा कार्यान्वियन करेंगे।

बम्बई से बम्बई तक की जनसंघ की कहानी बलिदान, संघर्ष और प्रगति की कहानी है। इस कहानी को गढ़ने में जिनका सबसे बड़ा हाथ था वे पं० दीनदयाल उपाध्याय अब हमारे बीच में नहीं हैं। हत्यारों ने हमारा साथी, मित्र और मार्गदर्शक हमसे छीन लिया। किन्तु, पण्डितजी का पुनीत जीवन और प्रेरणादायक कार्य हमारे सामने है। कंधे से कंधा लगाकर, कदम से कदम मिलाकर, हमें अपनी जययात्रा को ध्येय सिद्धि के शिखर तक ले जाना है। भावी भारत हमारे प्रयत्नों और परिश्रम पर निर्भर करता है। हम अपना कर्तव्य पालन करें। हमारी सफलता सुनिश्चित है।

अटल बिहारी वाजपेयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमिट स्मृतियां

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी
डा० रघुवीर
श्री दीनदयाल उपाध्याय

डा० वी० के० जान
डा० मो० के० दीक्षित
श्री केशवचन्द्र
श्री गिरिराज किशोर कपूर
श्री कुंजबिहारी लाल राठी
श्री सुन्दरलाल राय
श्री एम० ए० वेंकटराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी

आधुनिक बंगाल के निर्माता सर आशुतोष मुखर्जी ने लगभग अर्धशताब्दी के अपने सार्वजनिक जीवन में बंगाल और उससे भी बढ़कर भारत को अनेक देन दीं। परन्तु, इनमें सबसे महान देन है उनका महान सपूत स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी, जिसने न केवल शिक्षा और सांस्कृतिक क्षेत्र में अपने पिता की परम्परा को आगे बढ़ाया, वरन् उसने अपनी विद्या एवं बुद्धि के वल पर देश के राजनीतिक क्षितिज पर भी प्रभावी कार्य किये, जिनके लिए भारत-भारती सदा-सदा उस महान आत्मा की ऋणी रहेगी।

श्यामाप्रसाद का जन्म ६ जुलाई, १९०१ को कलकत्ता में हुआ। उन्होंने अपनी श्रद्धामयी माता श्रीमती योगमाया देवी और अपने निर्भीक विद्वान पिता से, जन्मकाल से ही विद्या एवं धर्म के प्रति आस्था प्राप्त की। श्यामाप्रसाद एक प्रतिभासम्पन्न छात्र थे। उन्होंने ए० ए० बी० एल० तक की सभी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी एवं प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण कीं तथा १९२६-२७ में कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त करने वह इंग्लैंड गये।

जन्मजात प्रतिभाशाली

१९२४ में श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी कलकत्ता उच्च न्यायालय में एडवो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केट हो गये और उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय की सिनेट के लिए निर्वाचित होकर उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया। उसी वर्ष उन्होंने अपने पिता के स्वर्गवासी होने के कारण सिण्डीकेट में उनके रिक्त स्थान की पूर्ति की। वह १९२९ में कांग्रेस टिकट पर बंगाल विधान परिषद के लिए निर्वाचित हुए, परन्तु अगले ही वर्ष उस समय उन्होंने विधान परिषद से त्याग-पत्र दे दिया, जब कांग्रेस ने विधान मंडलों को बहिष्कार करने का निर्णय किया था। परन्तु वह १९३१ में पुनः विश्वविद्यालय क्षेत्र से विधान परिषद के लिए निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुने गये। इस प्रकार ३० वर्ष की आयु में डा० मुखर्जी पूरी तरह से सार्वजनिक जीवन में आ चुके थे।

परन्तु उनका राजनीतिक जीवन १९३७ में, उस समय से शुरू होता है, जब १९३५ के अधिनियम के मातहत प्रान्तीय स्वायत्तता के अन्तर्गत बंगाल की पूर्ण विधानसभा मिली और डा० मुखर्जी विश्वविद्यालय क्षेत्र से उसके लिए चुने गये। इस समय तक वह न्यूनाधिक रूप में कांग्रेसी ही थे। परन्तु इसके बाद उन्होंने विधानसभा में बैठकर कांग्रेसियों की अराष्ट्रीय वृत्ति को देखा। उनको महसूस हुआ, कि मुस्लिम लीग की गतिविधियां बंगाल की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक सभी विशेषताओं को नष्ट कर देंगी और यदि इन्हें न रोका गया, तो हिन्दू मात्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा। १९३९ में, अंग्रेजों के प्रोत्साहन से मुस्लिम लीग ने चटगांव, मुंशीगंज, केसरगंज और ढाका आदि स्थानों पर जो हिन्दू महिलाओं पर अत्याचार कराये थे, उनसे तो, डा० मुखर्जी की आंखें खुल गयीं।

इस अनुभव ने उन्हें सिखा दिया, कि कांग्रेस की दोषपूर्ण राष्ट्रीयता ही इस समस्या की मूल है और उसी के कारण भारतीय समाज में भ्रम पैदा हो रहे हैं तथा मुस्लिम लीग को प्रोत्साहन मिल रहा है। बस इसके बाद डा० मुखर्जी का १९४० से १९४७ तक का जीवन भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। कांग्रेस की दब्बू एवं समझौतावादी नीतियों एवं मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकतापूर्ण गतिविधियों का, जिनका मिला-जुला परिणाम भारत विभाजन में निकला, डा० मुखर्जी ने सदा विरोध किया।

राजनीतिक दूरदर्शिता

अगस्त, १९४२ में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में कांग्रेस नेताओं को जेलों में बन्द करने के बाद जब ब्रिटिश शासन ने देश में निर्दयता से स्वतंत्रता संग्राम को कुचलना शुरू किया, तब डा० मुखर्जी ने बंगाल मंत्रिमंडल के सदस्य होते हुए भी देश की जनता की आवाज को ऊंचा उठाया। बंगाल के तत्कालीन गवर्नर सर जान हरबर्ट से उनका उस समय हुआ पत्र-व्यवहार और विशेष रूप से बंगाल मंत्रिमंडल से दिया त्याग-पत्र, उस काल की महान राजनीतिक धरोहर मानी जायगी।

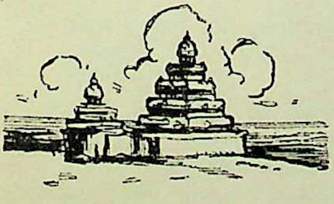

१९४६ में जब विधान निमात्री सभा बनी, तब डा० मुखर्जी बंगाल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके लिए चुने गये । सभा में प्रकट हुई उनकी योग्यता और दिखायी दी कर्त्तव्यपरायणता ने उन्हें देश के नेता के रूप में प्रस्तुत किया । देश के विभाजन ने कांग्रेस के राष्ट्रवाद की विफलता एवं मुस्लिम लीग के सामने कांग्रेस नीतियों की पराजय स्पष्ट कर दी थी । उससे ऐसा अनुभव होने लगा था कि कांग्रेस अपने अनुभवों से कुछ सीखेगी, इसीलिए डा० मुखर्जी ने भी यही सोच कर, कि अब कांग्रेस अपनी नीतियों में परिवर्तन कर उन्हें यथार्थवादी बनायेगी, १५ अगस्त, १९४७ को पं० जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमण्डल में शामिल होना स्वीकार कर लिया ।

उन्होंने ढाई वर्ष के अपने मंत्रित्व काल में जो सेवा एवं सफलता प्राप्त की, उससे उनके सार्वजनिक जावन में चार-चांद लग गये । यद्यपि सरदार पटेल व पं० नेहरू नहीं चाहते थे कि डा० मुखर्जी मंत्रिमंडल से त्याग-पत्र दें, परन्तु डा० मुखर्जी की अन्तरात्मा तत्कालीन मंत्रिमंडल के अनेक कार्यों से खिन्न हो उठी और उन्होंने अप्रैल १९५० में त्याग-पत्र दे दिया । उनके इस कार्य ने यह सिद्ध कर दिया कि डा० मुखर्जी को निजी स्वार्थ से सार्वजनिक हित अधिक प्रिय है ।

केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के त्याग-पत्र ने डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सार्वजनिक जीवन में नया राजनीतिक अध्याय शुरू कर दिया । मंत्रिमण्डल में वह एक प्रान्तीय नेता के रूप में शामिल हुए थे, परन्तु उससे बाहर आते हुए वह एक राष्ट्रीय नेता के रूप में चमकने लगे । सभी गैर-कांग्रेसी राष्ट्रवादी शक्तियां उन्हें अपना प्रवक्ता समझने लगीं ।

भारतीय जनसंघ में शामिल

भारतीय जनसंघ उसी समय अपना अखिल भारतीय रूप ले रहा था । उसके कार्यकर्त्ताओं के सामने प्रश्न था कि इस राष्ट्रवादी कार्यकर्त्ताओं की संस्था का प्रथम अध्यक्ष कौन बने ? तत्कालीन भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का ही ऐसा व्यक्तित्व था, जिसे यह गौरव प्रदान किया गया ।

इस नये राजनीतिक दल का निर्माण प्रथम महानिर्वाचन के कुछ ही पूर्व हुआ था, परन्तु जैसा कि डा० मुखर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में उस समय बताया था कि भारतीय जनसंघ केवल चुनाव लड़ने के लिए ही नहीं बना, परन्तु आम चुनाव में जनसंघ के सिद्धान्तों एवं नीतियों को जनता तक पहुंचाया जा सकता है । इसलिए इस अवसर का लाभ उठाने के लिए भारतीय जनसंघ ने राज्य विधानसभाओं और लोकसभा के चुनाव लड़ने का निर्णय किया ।

११ मई, १९५३ को प्रारम्भ हुए प्रथम संसद के अधिवेशन में यद्यपि जनसंघ की शक्ति इतनी नहीं थी, परन्तु डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी प्रतिपक्षी दल के नेता बने और कम्युनिस्ट सहित सभी प्रतिपक्ष सदस्य उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते थे । उनकी संसदीय कुशलता एवं वाक्पटुता ने न केवल प्रतिपक्षी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदस्यों वरन् कांग्रेस के सदस्यों को भी प्रभावित किया । तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू उनको अपने ही समान आदर देते थे

संसद के वाहर उन्होंने अनेक बौद्ध देशों की यात्रा कर तथा भारतीय महाबोधी समिति के अध्यक्ष होकर भगवान गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों को आदर दिया और, बताया कि बौद्ध दर्शन महान हिन्दू धर्म का ही अंश है । पूर्वी बंगाल से निष्कासित हिन्दुओं की दर्दभरी आवाज उन्होंने सुनी और कश्मीर के भारत में विलय के प्रश्न को उठाया । उन्होंने शेख अब्दुल्ला की बदनियती का पर्दाफाश करना शुरू किया, जिसकी दमनकारी नीतियों के विरुद्ध जम्मू-कश्मीर में प्रजा परिषद ने सत्याग्रह किया । इस सत्याग्रह की मुख्य मांग थी कि जम्मू के साथ भेद-भाव न बरता जाय और प्रजा परिषद के नेता श्री प्रेम नाथ डोगरा को जेल से रिहा किया जाय तथा जम्मू व कशमीर का विशेष दर्जा समाप्त किया जाय । इस सत्याग्रह में सैंकड़ों लोगों ने भाग लिया ।

अमर बलिदान

२९ जून, १९५२ को सारे देश में कश्मीर दिवस मनाया गया । डा० मुखर्जी ने दिल्ली की विशाल सार्वजनिक सभा में भाषण दिया । देश की जनता में जागृति आयी । प्रजा परिषद ने ९ व १० अगस्त को जम्मू में एक सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें अनेक संसद-सदस्यों को निमंत्रण दिया और कहा कि वे स्वयं वहां आकर देखें कि जम्मू की जनता के साथ कैसा भेद-भाव किया जा रहा है । डा० मुखर्जी ने जम्मू जाने का निर्णय संसद में घोषित किया ।

उन्होंने दिल्ली से प्रस्थान करने के पूर्व एक वक्तव्य जारी कर अपने जम्मू जा । का इरादा स्पष्ट किया था कि मैं वहां जाकर यह देखना चाहता हूं कि जम्मू में क्या हो रहा है ? डा० मुखर्जी और उनके साथी माधोपुर चौकी तक शान्तिपूर्वक चले गये और उपायुक्त तथा अन्य अधिकारियों ने उन्हें विदाई दी, परन्तु ज्योंही वे रानी के पुल के मध्य में पहुंचे त्योंही कश्मीर पुलिस अधिकारी ने राज्य के मुख्य सचिव का १०-५-५३ का आदेश दिखाया, जिसमें उनके प्रवेश पर प्रतिबन्ध था ।

परन्तु डा० मुखर्जी ने कहा कि मैं जम्मू जाऊंगा ।'

इसके बाद उन्हें जम्मू-कश्मीर पुलिस इन्स्पैक्टर जनरल के ११-५-५३ के आदेशानुसार गिरफ्तार कर लिया गया । उनकी ४० दिन की श्रीनगर जेल की कहानी स्वतंत्र भारत के राजनीतिक जीवन में अभी तक रहस्य बनी है, क्योंकि उसी अवधि में डा० मुखर्जी २३ जून, १९५३ को देश से सदा-सदा के लिए छीन लिये गये ।

यद्यपि आज वह हमारे बीच नहीं है, परन्तु उन्होंने अपने अमर बलिदान से जो अखण्ड भारत का दीप जन-जन व मन-मन में प्रज्ज्वलित किया था उसे सदा प्रदीप्त करना हमारा कर्त्तव्य है । उन्होंने जो अज्ञान, अन्धकार, अत्याचार को चुनौती दी थी उसे आगे बढ़ाना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

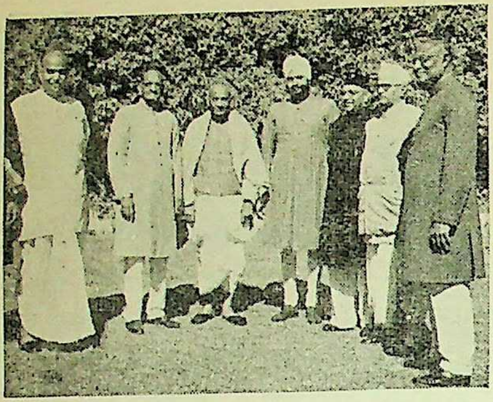

भारत के लौहपुरुष सरदार पटेल के साथ
महान नेता डा० मुखर्जी ।

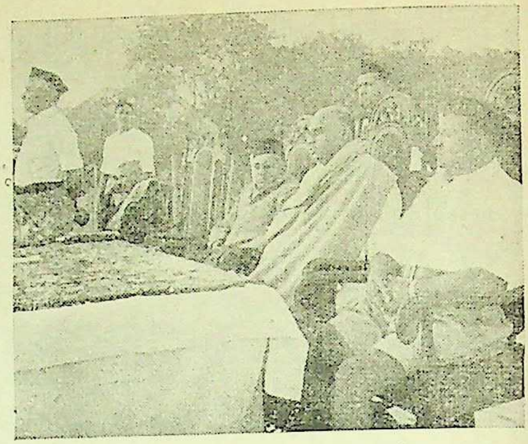

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यक्रम में भाग लेते हुए ।

कश्मीर आन्दोलन के सत्याग्रहियों को पुष्पमाला अर्पित करते हुए ।

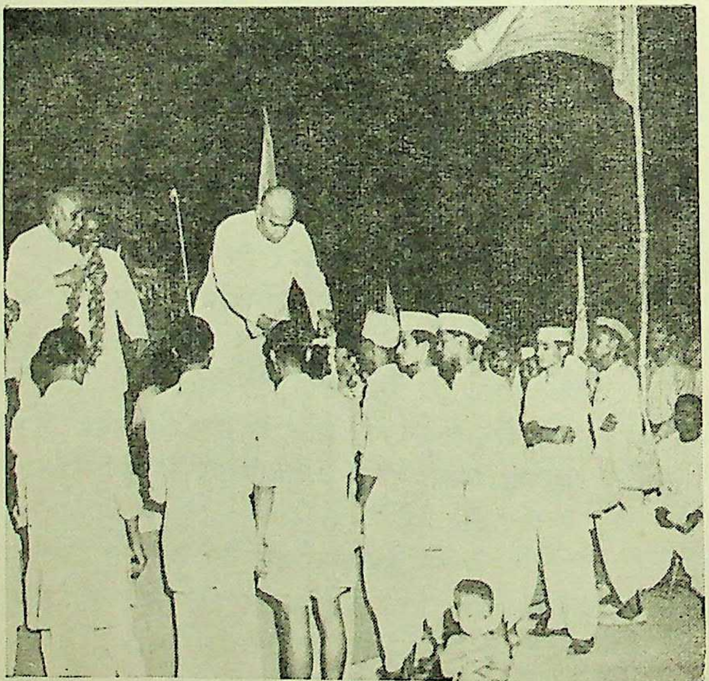

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धन किसानों के मध्य

देश की जनता को अखण्ड भारत के लिए आह्वान करते हुये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य रघुवीर

एशिया के हृदयांचलों में भारत-भारती विलसती है। संस्कृत के पूजा घोष देश-देशांतर के वातावरण को पुनीत करते हैं, भारत के देव और देवियां साधक-कलाकारों की तूलिका से रूपमाधुरी में स्नान करने लगते हैं—यह दृश्य शिविर देश (साइबेरिया) के शीतमय प्रदेशों से लेकर इण्डोनेशिया की शस्य-श्यामला उपत्यकाओं के विराट भू-भाग की आत्मा है। भारत की इस विशाल धर्म विजय का साक्षात्कार और उसका संपोषण आचार्य रघुवीर की अभिन्न साधना रही है।

यूरोप में भारत दर्शन

रोमणी जातियों को देखते ही उनका भारतीय हृदय उल्लसित हो उठता। ये भारतीय जातियां हैं, जो एक सहस्र वर्ष पूर्व भारत से बाहर निकलीं और चलती-फिरती ईरान, तुर्की, मिस्र, यूरोप, अमेरिका तथा सोवियत संघ में फैल गयीं। इन्हें कालो (कृष्ण वर्ण) भी कहते हैं। जब कभी डा० रघुवीर यूरोप जाते, इन भारत-पुत्रों के

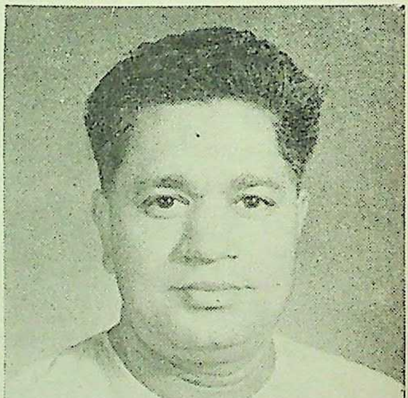

डा० लोकेश चन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम्बुओं और घोड़ा गाड़ियों में शब्द संग्रह करते, उनके गीत भरते और उनकी रीतियां समझते।

शिविर देश में लकड़ी के फलकों से विभिन्न ग्रन्थ छापे जाते थे। डा० रघुवीर ने प्रथम वार इन दुर्गम स्थलों से पाण्डुलिपियां एकत्र कीं, जो अब भी सरस्वती-विहार को सुशोभित करती हैं। इनमें पाणिनी का व्याकरण, कालिदास का मेघदूत, संस्कृत मन्त्रों के समुच्चय, आयुर्वेद का अमृत-अष्टांगहृदय आदि सहस्रों ग्रन्थ हैं, जो संस्कृत से वुर्यात भाषा में अनुवाद किये गये थे। यहां शक्तियों के अनन्तर गांगिन ओस अर्थात् गंगा जल पहुंचाने में भी डा० रघुवीर अग्रणी थे।

अपने जीवन के अन्तिम दशक में डा० रघुवीर का अनुसंधान क्षेत्र मोंगोल भाषा, साहित्य, संस्कृति और धर्म रहा। मोंगोल इतिहासों में उल्लेख है कि छठी शताब्दी के अन्तिम दशक में शाक्यवंश, नरेन्द्रयशस् और अन्य भारतीय आचार्य जनहिताय उनके देश में आये थे। तब से भारतीय आचार्यों का आगमन सतत चलता रहा। इसके परिणामस्वरूप मोंगोल भाषा में छह सहस्र संस्कृत ग्रन्थों का भाषान्तर हुआ। सन् १९४० में ७५० विहार थे, जिनमें ३२ लाख पाण्डुलिपियां तथा १० लाख मूर्तियां थीं, मन्दिर द्वारों पर गणेशजी की मूर्तियां थीं और लाखों प्रभापट थे। मंगोलिया भ्रमण से डा० रघुवीर पाण्डुलिपियों के तीन लाख पृष्ठों के अणुचित्र (माइक्रोफिल्म) कई पाण्डुलिपियां तथा प्रभापट अपने साथ लाये थे। मोंगोल के राष्ट्रपति का नाम शम्भु है। उनके ध्वज का अभिधान सोयम्बो अर्थात् स्वयंभू है। इसमें दारिगंगा अर्थात् तारा गंगा वहती है। उप-प्रधानमन्त्री की पत्नी का नाम इन्द्री है और इन्द्रीजी की माता का नाम रत्ना।

चीन में भारत-भारती

डा० रघुवीर ने चीन में भारत-भारती के दर्शन भी किये। दम, यमनान्तक, महाकाल के कलात्मक रौद्र रूप, भारतीय और चीनी आचार्यों एवं अर्हतों के ओजस्वी आलेख्य, चीन के कोने-कोने से एकत्रित पत्थरों पर खुदे हुए प्राचीन संस्कृत शिलालेखों की वृहदाकार छापों आदि के दर्शन से भारतीय आत्मगौरव की अनुभूति होती है।

इस प्रकार एशिया के विशाल प्रांगणों में भारतीयता की सम्पूर्ण थाती के दर्शन डा० रघुवीर ने किये। उनके अमूल्य संग्रह में कहीं महाकलिंग (आधुनिक फिलिपाइन) के शिलालेख हैं, जो भारतमूलक लिपि में लिखे हैं, कहीं कोनियो से प्राप्त महाराज मूलवर्मन का संस्कृत शिलालेख है, कहीं बीपान्तर (इण्डोनेशिया) से ताड़पत्रों की सहस्रों हस्तलिपियां है, कहीं बालि की राजधानी दन्पसार के चौक में प्रतिष्ठित महर्षि व्यास की प्रतिमा का चित्र। कहीं दसवीं शताब्दी के प्राम्वानन, शिवालय कलाय के २४० उपमन्दिरों के सैकड़ों चित्रों की चित्रावली है, कहीं स्मरदहन का ताड़पत्र रतिदेवी के विलाप को चित्रों की करुणा में ढाल रहा है, कहीं इण्डोनेशिया के कवीश्वर की कवि भाषा में रामायण है, कहीं कम्बुज देश के आंकोर महामन्दिर के गगनचुम्बी शिखर और मीलों तक फैले अवशेषों के चित्र, कहीं थाई देश की रामायण वहां की कला में सजीव हो उठी है। इन सब कृतियों की संख्या एक लाख है। डा० रघुवीर के संग्रहों की रूपरेखा मात्र देने के लिए ही कई ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता है। यह संग्रह डा० रघुवीर की सतत अन्वेषक तथा भारतीय संस्कृति के प्राचीन स्थलों को खोज निकालने की कभी न पूरी होने वाली मंगलकारी अतृप्त कामना के अमर दीप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

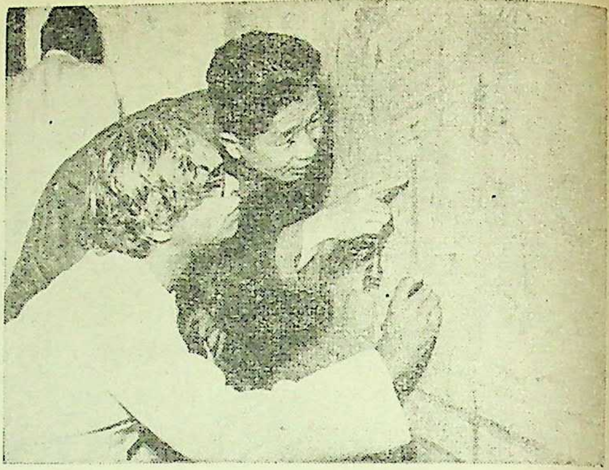

दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में भित्ती चित्रों के अध्ययन में रत आचार्य रघुवीर ।

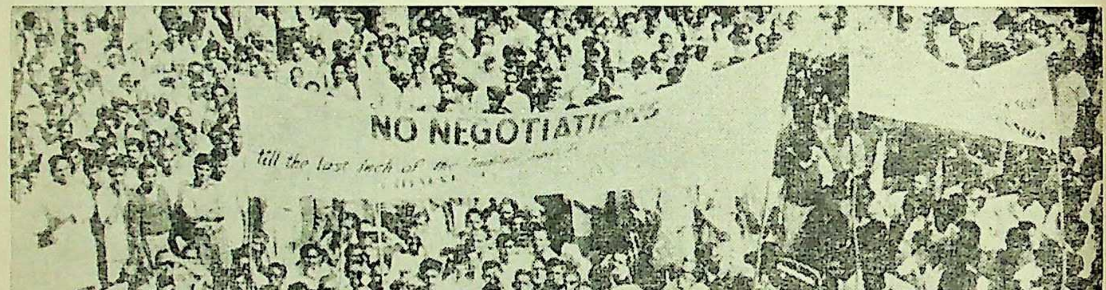

चीनी आक्रमण के विरुद्ध संसद भवन पर हुए प्रदर्शन के समय आयोजित सभा में भाषण करते हुए ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोपाल में दिसम्बर १९६२ में जनसंघ के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण करते हुए।

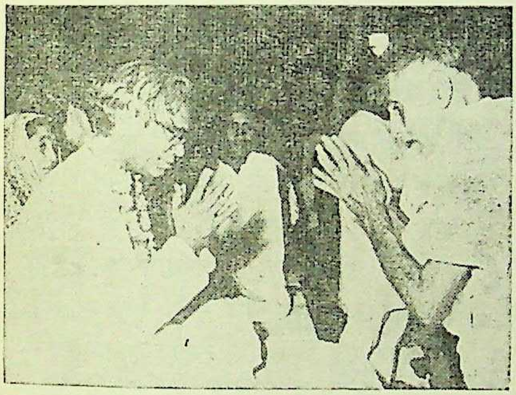

विनम्रता की मूर्ति आचार्य रघुवीर।

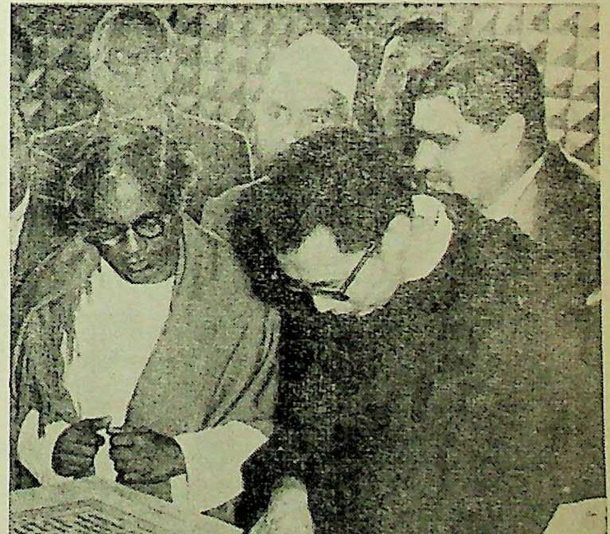

महामहिम दलाईलामा के साथ आचार्य रघुवीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० दीनदयाल उपाध्याय

गत बीस-इक्कीस वर्ष में भारतीय राजनीति में पाश्चात्य विचार-सारिणी के प्रभाव से जो अनेक बुदबुदे या लघु लहरें दिखायी दे रही हैं उनके कुप्रभावों से भारतीय जन-मानस को बचाने के लिए जिन महापुरुषों ने प्रयास किया, उनमें स्वर्गीय पं० दीनदयाल उपाध्याय का नाम अग्रपंक्ति में लिखा जायेगा। राज्य को ही सब कुछ समझ कर उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाले पाश्चात्य दर्शन ने भारतीय जन-मानस में भी यह भ्रम पैदा कर दिया था कि सत्ता से ही सब कुछ किया जा सकता है, परन्तु पं० उपाध्याय ने भारतीय जनसंघ के १४ वर्ष तक महामंत्री रह कर अपने व्याख्यानों एवं लेखों तथा उनसे भी बढ़कर आचरण से यह सिद्ध कर दिया कि सत्ता प्राप्ति राजनीति का साध्य नहीं साधन है। जनतंत्र में भी परिष्कृत लोकमत की अत्यन्त आवश्यकता है और लोकमत का परिष्कार राज्य नहीं कर सकता, जैसा कि कम्युनिज्म के प्रवर्तक लेनिन ने माना है, वल्कि लोकमत के परिष्कार के लिए ऐसे निरद्वन्द सामाजिक नेता चाहिए, जिन्हें किसी मोह या लोभ में फंस कर 'पुरुषो अर्थस्य दासः' बोलकर राजनेताओं की हां में हां मिलाने की आवश्यकता या विवशता न पड़े। स्वर्गीय श्री उपाध्याय स्वयं उन निर्द्वन्द्व सामाजिक नेताओं में थे जिन्हें हम प्राचीन पारिभाषिक शब्दावली में संन्यासी भी कह सकते हैं।

यद्यपि स्वर्गीय दीनदयाम उपाध्याय भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष हो गये थे अर्थात् जिस राजनीतिक रथ का वह संचालन कर रहे थे, सारथी के रूप में उसके वह रथी हो गये थे, परन्तु जनसंघ के कार्यकर्ता आज भी उन्हें सारथी ही समझते हैं और उन्होंने आज भी उन्हीं महान आदर्श एवं सिद्धान्तों को अपने जीवन का संचालक तत्व माना है, जिनकी पं० उपाध्याय ने जीवन में व्याख्या की थी। कार्य के प्रति निष्ठा, ध्येय के प्रति एकाग्रता और सफलता के प्रति निराभिमानता स्वर्गीय नेता के ये आचरण आज भी जनसंघ के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए प्रेरणा-स्रोत बने हैं।

श्री दीनदयाल उपाध्याय का जन्म सोमवार १३ कृष्ण चैत्र सं० १९७३ वि० तदनुसार २५ दिसम्बर, १९१६ को जयपुर-अजमेर की रेलवे लाइन पर स्थित ग्राम धनकिया में हुआ। जन्म से प्राप्त परिधान में ग्रामीण सादगी, आकृति में औदास्य और व्यवहार में सरलता उनमें जीवनपर्यन्त दिखायी देती रहीं। वास्तव में उनको देख कर कोई कह नहीं सकता था कि श्री उपाध्याय के रूप में प्रतिभा, विद्वता और संगठक का अपूर्व संमिश्रण हुआ है। जन्म के समय उनके पिता श्री भगवती प्रसाद उत्तर प्रदेश के जिला मथुरा के ग्राम फर्रहा के समीप जलेसर रोड नामक स्टेशन पर स्टेशन मास्टर थे। उनके नाना पं० चुन्नीलाल शुक्ल धनकिया में स्टेशन मास्टर थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बचपन में ही माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण श्री दीनदयाल जी का पालन-पोषण उनके मामा श्री राधा रमण शुक्ल के घर में हुआ। वह प्रारम्भ से ही प्रतिभाशाली थे। विद्यालय की प्रारम्भिक शिक्षा काल में ही 'पूत के पाँव पालने में' दीखने लगे थे। सीकर (राजस्थान) के कल्याण हाई स्कूल से अजमेर बोर्ड की मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की तथा सम्पूर्ण बोर्ड में प्रथम रहे। आपको स्वर्ण पदक दिया गया। दो वर्ष पश्चात् पिलानी (राजस्थान) से इन्टर की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी भांति कानपुर (उत्तरप्रदेश) के सनातन धर्म कालिज से बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। तदुपरान्त आगरा के सेन्ट जॉन कालिज में एम० ए० (अंग्रेजी) में प्रविष्ट हुए। परन्तु प्रथम वर्ष के पश्चात् वीच में ही छोड़कर इलाहाबाद आ गये। वहाँ बी० टी० परीक्षा उत्तीर्ण की। अद्भुत प्रतिभा के कारण उन्हें सदा छात्रवृत्ति मिलती रही।

कानपुर में अध्ययन-काल (१९३७) में आपका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से सम्बन्ध आया। संघ के सम्पर्क ने उनके जीवन की दिशा वदल दी। उन्होंने दृढ़ संकल्प किया जिसे वह ११ फरवरी, १९६८ के स्वर्गारोहण के दिन तक सफलता से निभाते रहे। संभवतः इस सम्पर्क की ही देन थी कि वे भारत की राजनीति में एक दिशानिर्देशक उज्जवल प्रकाशपुँज बन गये थे।

अध्ययन समाप्त कर श्री उपाध्याय जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बनकर संगठन कार्य में जुट गये। १९४२ में सर्वप्रथम उन्हें लखीमपुर (उत्तरप्रदेश) का जिला प्रचारक नियुक्त किया गया। शिक्षा कार्य में योगदान देने के लिए वह यदा-कदा एक हाई स्कूल में निःशुल्क अध्यापक का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य करते थे। अद्वितीय प्रतिभा, उच्च चरित्र और स्नेहयुक्त व्यवहार से आकर्षित हो स्कूल के प्रबन्धकों की ओर से हाई स्कूल का मुख्याध्यापक का स्थान देने की इच्छा प्रकट की गयी, परन्तु पं० दीनदयालजी ने यह कह कर अमान्य कर दिया कि न तो मेरी आवश्यकताएं इतनी हैं कि इतना पैसा लूं और न अपना एकनिष्ठ जीवन त्यागने की इच्छा है। कार्य-कौशल और बुद्धिमत्ता के कारण वह पांच वर्ष में ही उत्तरप्रदेश के सहप्रान्त प्रचारक बन गये और १९५१ तक वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सहप्रान्त प्रचारक रहे। उन्हीं दिनों १९५१ में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। तब श्री उपाध्याय जनसंघ की उत्तरप्रदेश शाखा के मंत्री बने।

अगले वर्ष (१९५२) में कानपुर में भारतीय जनसंघ का वार्षिक अधिवेशन हुआ। उस समय डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उन्हें भारतीय जनसंघ का एक महामंत्री नियुक्त किया। उनकी प्रतिभा और कार्य-कुशलता से प्रभावित हो डा० मुखर्जी ने कहा था कि यदि मुझे दो और दीनदयाल मिल जायं, तो मैं अतिशीघ्र भारत की राजनीति का चित्र बदल दूं।

भाग्य की विडम्बना, कि जून १९५३ में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की कश्मीर जेल के भीतर रहस्यमय ढंग से मृत्यु हो गई। अतः भारत की राजनीति का चित्र बदलने का उत्तरदायित्व स्वयं पं० दीनदयाल जी पर आ पड़ा। उन्होंने कुशलता से इस दायित्व का निर्वाह किया। १९६७ के चौथे महानिर्वाचन के परिणाम इस चित्र-परिवर्तन की दिशा का संकेत हैं। पं० दीनदयाल के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ कांग्रेस के पश्चात् दूसरे राजनीतिक दल के रूप में सामने आया तथा लगता है कि वह शीघ्र प्रथम स्थान भी प्राप्त कर सकेगा।

श्री उपाध्याय मूल विचारक थे। युवावस्था में ही उनकी प्रगल्भ बुद्धि, व्यक्ति और समाज, स्वदेश और स्वधर्म, परम्परा तथा संस्कृति जैसे गूढ़ विषयों की ओर आकृष्ट थी। इन विषयों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया और लेखनी संभाली। उनके प्रथम प्रकाशन में 'सम्राट चन्द्रगुप्त' तथा 'जगद्गुरु शंकराचार्य' तदोपरान्त जनसंघ के महामंत्री के रूप में उन्होंने पंचवर्षीय योजना, अवमूल्यन, भारतीय अर्थनीति—एक दिशा आदि विषयों पर बहुत-सी रचनाएं कीं। मृत्योपरान्त राजनीतिक विषयों पर उनके कुछ अंग्रेजी लेखों का संग्रह 'पोलिटिकल डायरी' के नाम से प्रकाशित किया गया है। आपके ही सम्पादकत्व में साप्ताहिक पांचजन्य तथा मासिक राष्ट्रधर्म और दैनिक स्वदेश का श्रीगणेश किया गया।"

यह है श्री उपाध्याय का संक्षिप्त जीवन परिचय, परन्तु वे क्या थे? इसकी जानकारी उनके जीवन से भी अधिक मृत्यु से मिलती है। मृत्यु के पश्चात उनके मित्रों ने तो भूरि-भूरि प्रशंसा की ही, उसी के साथ उनसे राजनीतिक मतभेद रखने वाले नेताओं ने भी उन्हें तिलक, गांधी और नेताजी बोस की कड़ी का नेता माना। वस्तुतः ऐसा लगता है कि पं० उपाध्याय ने शुक्र, बृहस्पति और चाणक्य की भांति आज की राजनीति को शुचि एवं शुद्धता के धरातल पर संगठित करने का प्रयास किया और राष्ट्रमन्दिर के निर्माण में 'महर्षि दधीचि' की भांति अपनी अस्थियां तक समर्पित करके चले गये।

■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

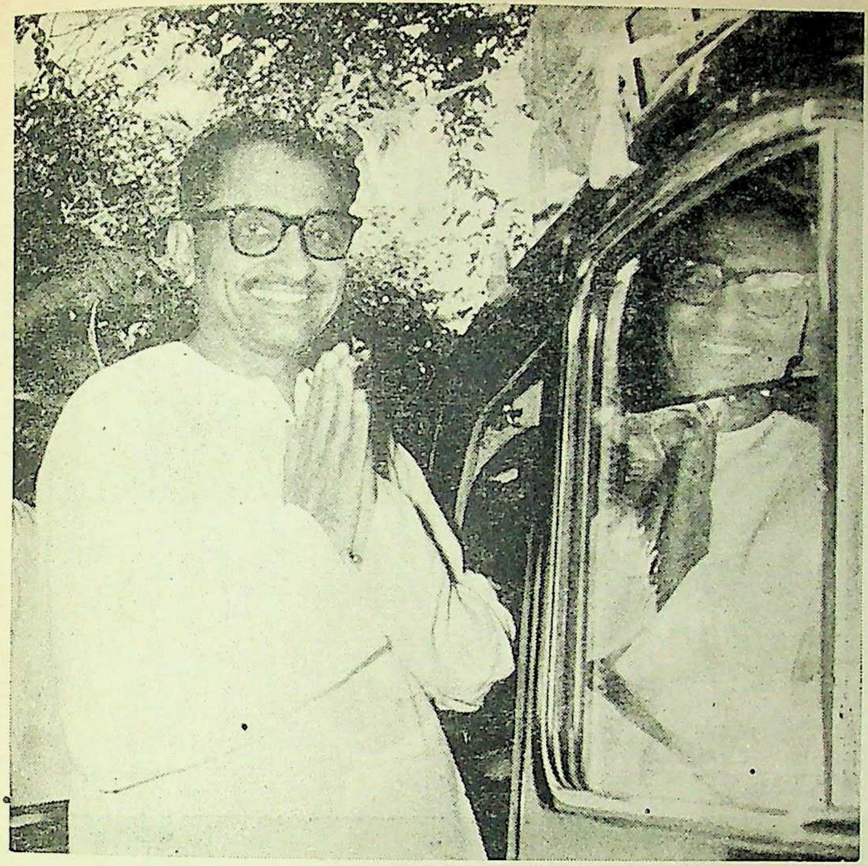

अजातशत्रु
पं० दीनदयाल उपाध्याय

लन्दन की एक सभा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

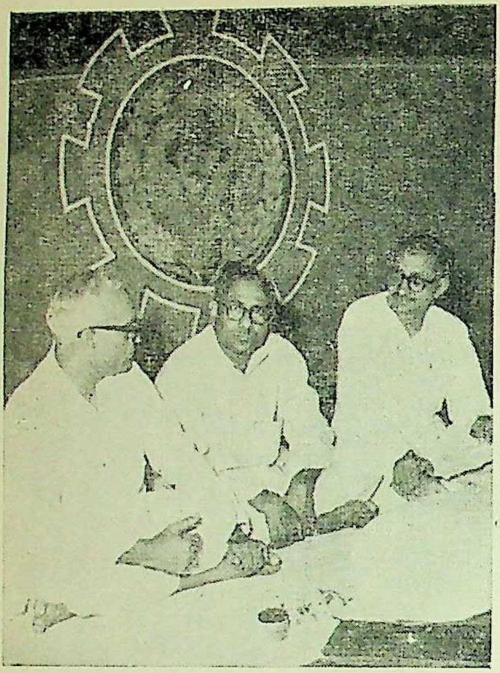

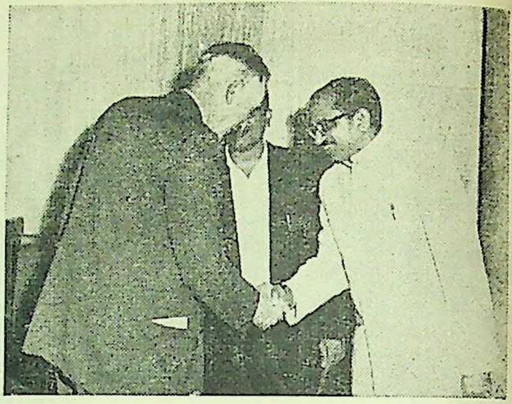

स्वर्गीय श्री उपाध्याय नयी दिल्ली में इस्रायली महावाणिज्य दूत से भेंट करते हुये।

सम्मेलन में श्री नाना देशमुख के साथ विचार-विमर्श करते हुए।

देश के महान् नेता देश की जनता के मध्य भाषण करते हुये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

0.7.8895

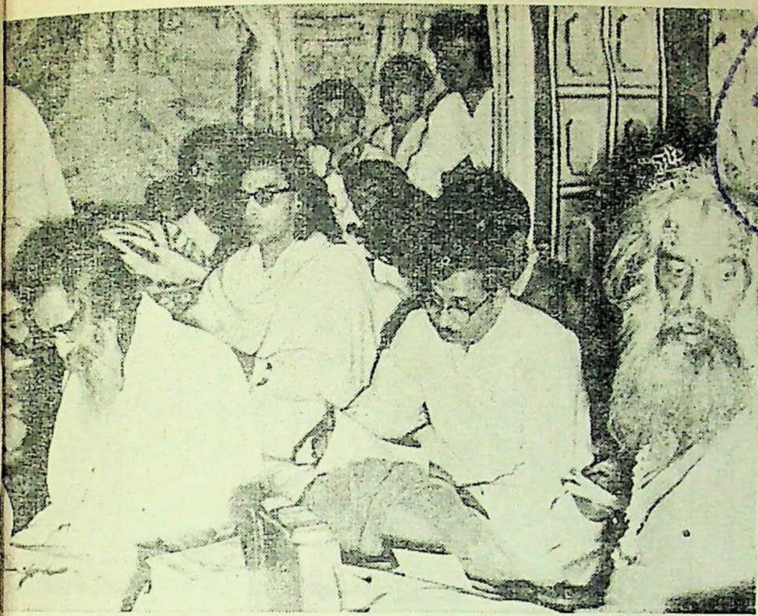

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक श्री गुरु जी के साथ।

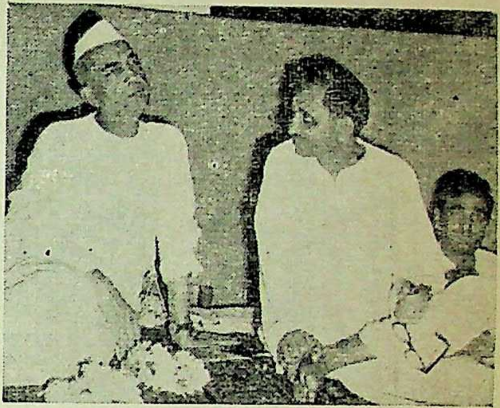

चौ० चरणसिंह से राजनीतिक विचार-विमर्श करते हुये ।

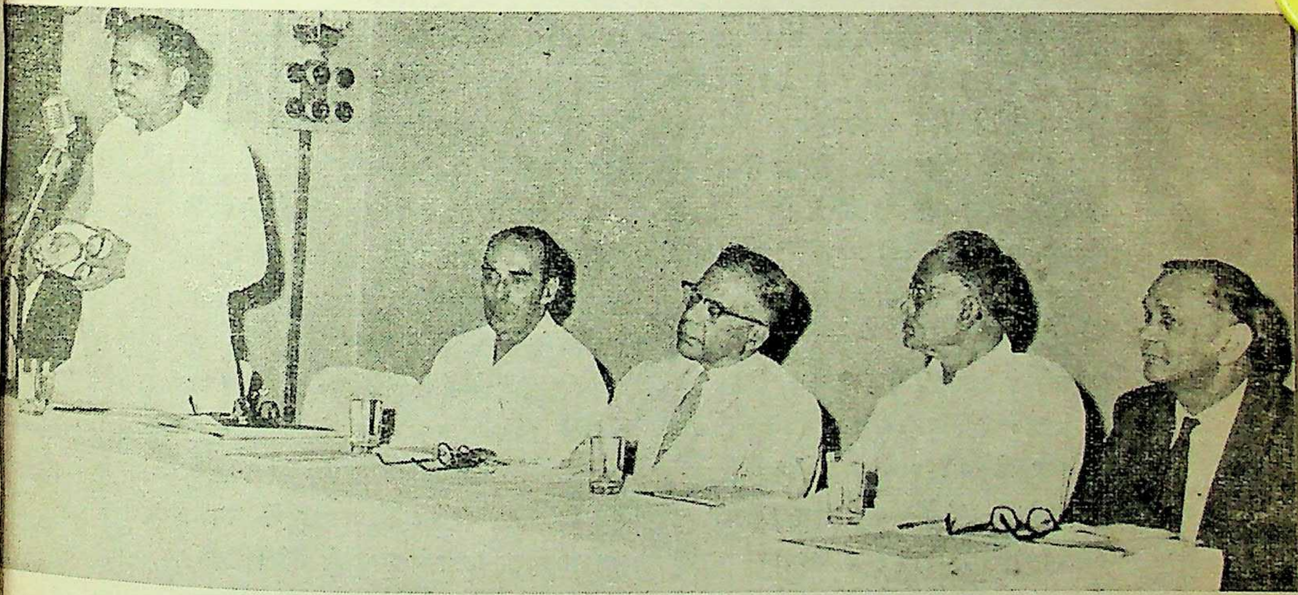

कलकत्ता में आयोजित सम्मेलन में भाषण करते हुए। मंच पर सर्वश्री मिनू मसानी, न्यायाधीश श्री पी० बी० मुखर्जी और श्री जयप्रकाशनारायण बैठे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा० वी० के० जान

तमिलनाडु जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष डा० वी० के० जान देश के प्रमुख विधिविशेषज्ञ थे। उनका जन्म केरल के एक ग्राम में हुआ और शिक्षा-दीक्षा हुई केरल, मद्रास और लन्दन में। वह ही एक ऐसे भारतीय थे, जो एल० एल० डी० (लन्दन) की परीक्षा में प्रथम आये। लन्दन में छात्र-जीवन में वह डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सहयोगी थे।

डा० जान १९४६ से १९५० तक विधान परिषद के सदस्य भी रहे। इसके पश्चात वह १९५३-५४ में भी विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित हुए। वह तमिलनाडु विधान परिषद में विरोधी दल के नेता भी रहे।

वह एक राजनेता के साथ-साथ अनेक सामाजिक संस्थाओं के भी प्रमुख रहे। मद्रास के मुख्य न्यायाधीश के शब्दों में डा० जान उन महान व्यक्तित्वों में से थे, जिन्होंने देश के निर्माण में योग दिया।

एक विद्वान एवं कुशल वक्ता होने के कारण डा० जान का सार्वजनिक जीवन अति प्रभावी रहा और उन्होंने सदा सांप्रदायिकता से घृणा की। इसी १९५१ में जब जनसंघ बना तब उन्होंने डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी से सम्पर्क कर मद्रास में उसकी स्थापना की और उसके कार्य में जुट गये। परंतु, १७ दिसम्बर, १९५८ को मद्रास में उनकी हृदयगति रुक जाने से मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु ने जनसंघ से ऐसा व्यक्तित्व छीन लिया, जिसके कारण दक्षिण भारत में उसका कार्य आगे बढ़ता। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

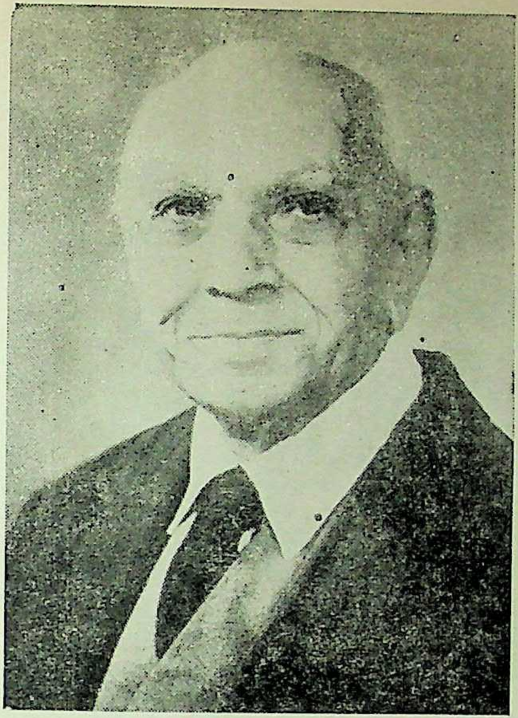

डा० मोहननाथ केदारनाथ दीक्षित

१९५१ में जब गुजरात में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई तब डा० मोहननाथ केदारनाथ दीक्षित ने उसका अध्यक्ष पद सम्भाला। उन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से एल० एम० एस० (उन दिनों एम० बी० बी० एस० का पाठ्यक्रम नहीं हुआ करता था) की उपाधी प्राप्त कर मलय, सिंहपुर, यूनान तथा अन्य अनेक देशों में सर्जन के रूप में कार्य किया। विदेश से लौटकर उन्होंने मैडिकल कालेज में अध्यापन किया तथा उसके बाद नेत्र चिकित्सा में विशेषज्ञ होने के लिए पुनः विदेश गये। उसके बाद १९३६ के युद्ध में वह सेना में डाक्टर बने।

१८९६ में डा० दीक्षित का सम्बन्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से आया और वह उस वर्ष कांग्रेस के अधिवेशन में स्वयंसेवक बनकर गये। १९२० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। उसके बाद उन्हें सूरत नगरपालिका का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया और वह सूरत शिक्षा समिति के भी अध्यक्ष बने। १९२३ में डा० दीक्षित प्रान्तीय विधान मंडल के लिए निर्वाचित हुए और वह १९३७ तक विधान मण्डल के सदस्य रहे। जनसंघ की स्थापना के बाद वह पुनः राजनीति में आये। स्वर्गीय डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के समर्थक होने के कारण उन्होंने गुजरात जनसंघ का प्रथम अध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी समर्थक थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कप्तान केशवचन्द

पंजाव जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष कप्तान केशवचन्द्र का जन्म सन् १८८६ के सितम्बर मास में महालक्ष्मी व्रत पर्व पर हुआ। उनकी शिक्षा पंजाब के विभिन्न स्थानों पर हुई। उन्होंने १८९८ में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए खालसा कालेज, अमृतसर में प्रवेश लिया। इस बीच वह क्रिकेट के उत्तम खिलाड़ियों में गिने जाते थे। वह सदैव खेल टोली के कप्तान रहे। उनके स्वास्थ्य से प्रभावित हो कालेज के अंग्रेज प्रिंसिपल ने उनको पुलिस के उच्च पद के लिए प्रमाणित कर पुलिस नौकरी में जाने का आग्रह किया तथा उनको पुलिस विभाग अधिकारियों की ओर से इस सम्बन्ध में स्वीकृति-पत्र प्राप्त हुए। परन्तु, उन्होंने सरकारी नौकरी ठुकरा दी।

विद्यार्थीकाल से ही उनकी राजनीति की ओर प्रवृत्ति थी। आरम्भ में उनका कार्यक्षेत्र आर्यसमाज का शुद्धि कार्य रहा। उन्होंने ला० लाजपतराय तथा स० अजीतसिंह के कार्यों में योगदान देने के लिए कालेज में एक क्लब बना रखी थी। इस क्लब के सम्बन्ध में इंगलैंड की पालियामेंट में प्रश्न भी पूछे गये। स० अजीतसिंह जब पंजाब में भूमिगत रहे, तो अमृतसर में उनकी व्यवस्था यही क्लब करती थी।

१९११ में वह प्रसिद्ध जलयांवाला बाग काण्ड में बुरी तरह घायल हुए थे। १९३८ में सांप्रदायिक एवार्ड पर ला० लाजपत राय ने जब पंजाब में हिन्दू महासभा का गठन किया तब आप अमृतसर शाखा के प्रमुख निश्चित हुए। १९४३ का अमृतसर का ऐतिहासिक हिन्दू महासभा अधिवेशन, जिसमें डा० मुखर्जी अध्यक्ष थे, उन्होने बुलाया था।

इसके बाद जब १९५१ में जनसंघ बना तब कप्तान केशवचन्द्र उसमें शामिल हो गये और उन्होंने इस राष्ट्रीय कार्य को पंजाब में प्रभावी बनाने के लिए जीवन-पर्यन्त कार्य किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

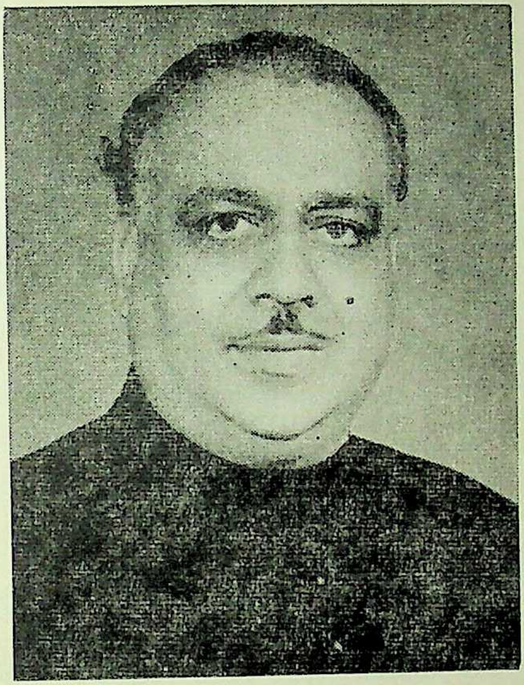

श्री गिरिराज किशोर कपूर

२८ अगस्त, १९६५ को उस समय जनसंघ ने एक वरिष्ठ नेता गंवा दिया, जब दिल्ली में राज्यसभा के सदस्य श्री गिरिराज किशोर कपूर की हृदय-गति रुक जाने से मृत्यु हो गयी। स्वर्गीय श्री कपूर मध्यप्रदेश जनसंघ के स्तम्भ थे। वह एम० एस० सी० होम्योपैथिक स्वर्ण पदक विजेता एवं कुशल व्यापारी तो थे ही, साथ ही वह एक कुशल राजनेता भी थ। उन्होंने मध्यप्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष के रूप में उस प्रदेश में दल को शक्तिशाली एवं प्रभावी दल में परिणत कर दिया। वह दल की अखिल भारतीय कार्यसमिति के सदस्य थे।

स्वर्गीय श्री कपूर राजनीति एवं व्यापार के क्षेत्रों में सफल होने के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी निष्ठावान् स्वयंसेवक थे। इसके अतिरिक्त वह केशव चन्द हितकारिणी सभा, जबलपुर के सदस्य और रामलीला समिति, सदर बाजार, जबलपुर के अध्यक्ष रहे। वह नवजीवन भारत सभा से भी सम्बन्धित थे और धार्मिक व्यक्ति होने के कारण उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया। वह अप्रैल, १९६४ में राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

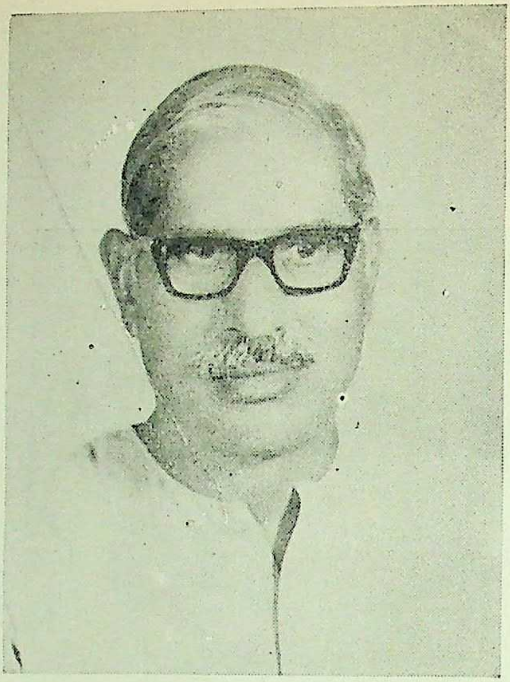

श्री कुन्जबिहारी लाल राठी

श्री कुंजविहारी लाल राठी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र सेवा में लगाया। १९४० से ही वह उत्तरप्रदेश के लखीमपुर जिले में स्व० पं० दीनदयाल उपाध्यय के घनिष्टतम सहयोगी के रूप में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्य में लगे रहे। वहुत वर्ष तक लखीमपुर जिला संघचालक के रूप में उन्होंने वहां संघ को सींचा और वढ़ाया।

१९५१ में जनसंघ का जन्म होने पर वे जनसंघ के विकास में जुट गये। अनेक वर्ष तक उत्तरप्रदेश जनसंघ के कोषाध्यक्ष एवं महामन्त्री के महत्वपूर्ण दायित्वों को संभाल कर उन्होंने उत्तरप्रदेश में जनसंघ का आज का विशाल एवं प्रभावी रूप खड़ा करने में अपना पूरा योग दिया। अपने जीवन के अन्तिम आठ वर्ष में उन्होंने वकालत छोड़ कर जनसंघ की पूर्णकालीन सेवा का कार्य किया। उन्होंने राष्ट्रसेवा के लिए अपने परिवार की उपेक्षा की। अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं की। अत: रोग ने उन्हें आ घेरा। वे कई वर्ष तक रोग से संघर्ष करते हुए भी कार्य में लगे रहे। उत्तरप्रदेश के प्रतिनिधि होकर राज्यसभा में पहुंचे।

किन्तु विधाता की महिमा अनन्त है। उसके निर्णय के सम्मुख हम नतमस्तक हैं। १३ जुलाई, १९६८ को युर्दैव ने उन्हें सदा के लिए हमसे छीन लिया। किन्तु स्व० राठी जी का ध्येयनिष्ठ और समर्पित जीवन प्रेरणा का एक अमर स्रोत वनकर सदैव हमारे हृदयों में जीवित रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

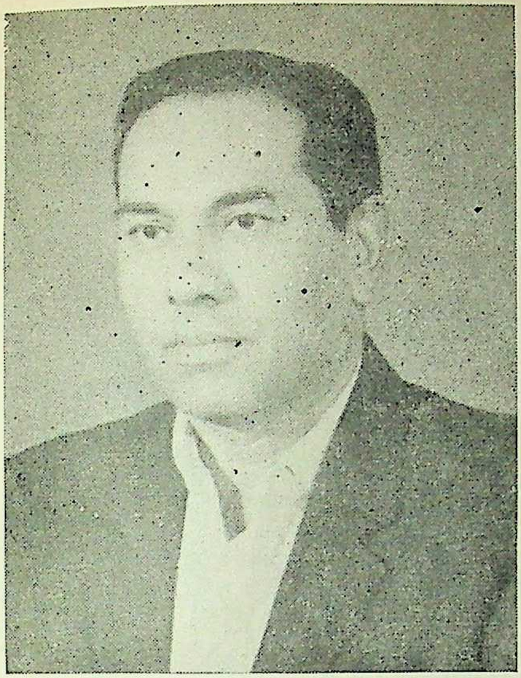

श्री सुन्दरलाल राय

२० जुलाई, १९६८ को उस समय जनसंघ ने अपना एक नेता गंवा दिया जब महाराष्ट्र प्रदेश जनसंघ के अध्यक्ष श्री सुन्दरलाल राय का हृदयगति रुकने से नागपुर में देहान्त हो गया। श्री राय जन्मजात देशभक्त थे। उन्होंने १९३१ में पिपरिया (म० प्र०) में तिरंगा ध्वज लेकर स्वतन्त्रता संग्राम में कार्य किया। स्वर्गीय श्री सुन्दरलाल हिन्दी प्रचारिणी समिति, छिन्दवाड़ा, टिम्बर मर्चेन्ट्स एसोसिएशन, नागपुर राटरी क्लब आदि अनेक संस्थाओं के उत्तरदायी पद संभालते रहे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक निष्ठावान् स्वयंसेवक के नाते उन्होंने राजनीतिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में कार्य किया।

उन्होंने अति सामान्य स्थिति से उठकर परिश्रम और प्रतिभा के कारण अपने जीवन में एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए सफल जीवन की अनेक दुर्गम ऊंचाइयों को प्राप्त किया। श्री राय ने एम० ए० (राजनीति शास्त्र) एल० एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की और नागपुर के जोशी हाई स्कूल में १२ वर्ष तक मुख्याध्यापक रहे। वह व्यवहार में बड़े ही मधुर एवं मिलनसार थे।

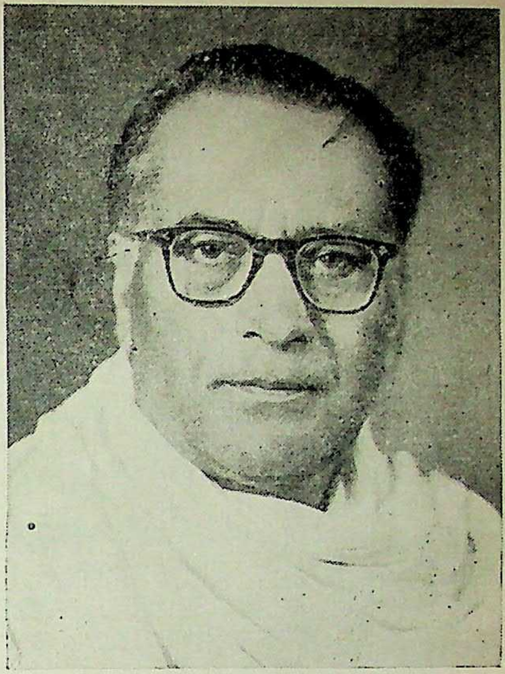

डा० वैंकटराव

स्वर्गीय प्रा० एम० ए० वैंकटराव अनेक वर्ष तक मैसूर जनसंघ के अध्यक्ष रहे। वह एक विद्वान तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थे। मैसूर विश्वविद्यालय में अनेक वर्ष तक दर्शनशास्त्र के आचार्य रहे। वह एक प्रसिद्ध लेखक थे, जिनकी विद्वतापूर्ण रचनाओं से अनेक पत्र-पत्रिकाओं की शोभा बढ़ती थी। ५ मई, १९६५ को बंगलूर में उनका स्वर्गवास हो यगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

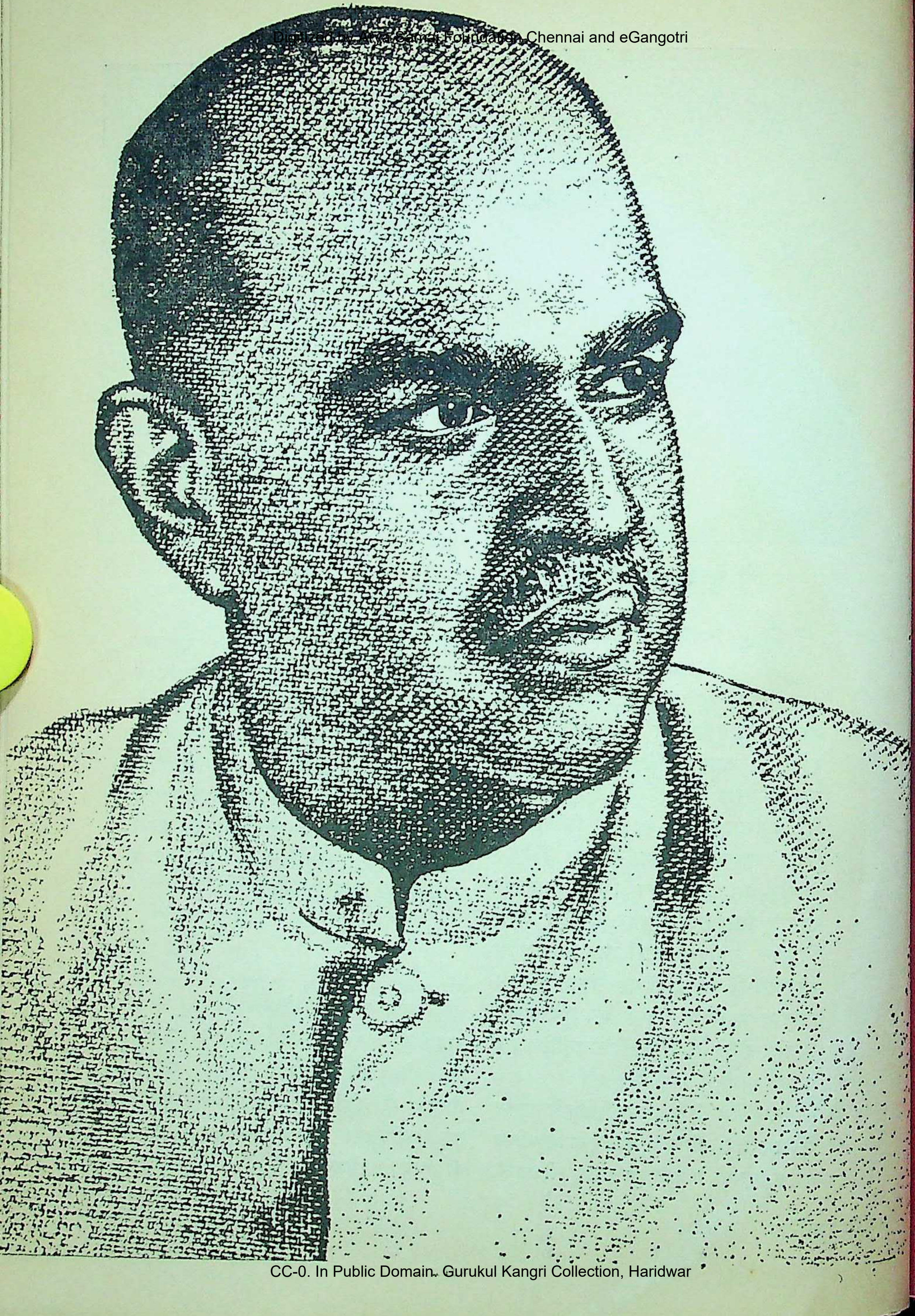

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

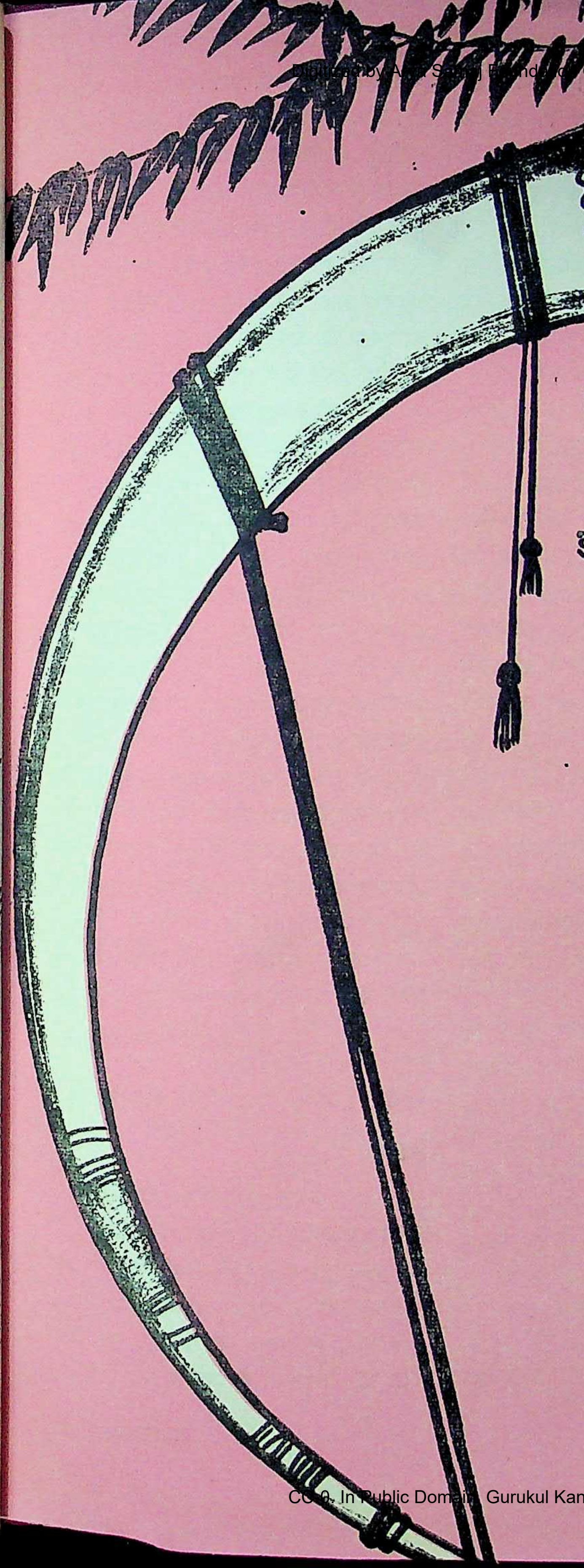

पथ और पाथेय

डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की वाणी से

मुस्लिम लीग को (संविधान सभा में) भांग लेने से क्यों रोका जा रहा है ? मेरा आरोप है कि ब्रिटिश शासन के रुख से प्रोत्साहित होकर मुस्लिम लीग भाग नहीं ले रही है । उसे यह महसूस हो रहा है कि यदि वह आगे नहीं आयी, तो वह संविधान सभा के अन्तिम फैसले को कार्यान्वित कराने से रोक सकती है । इस प्रकार का निषेधाधिकार पुनः किसी न किसी रूप में लीग के हाथों में पहुंच गया है और यही बात इस महान् सभा के भावी कार्यक्रम के लिए एक भारी खतरा है ।

मुस्लिम लीग आये या न आये । अगर वह आती है, तो अच्छी बात है । मगर यदि वह भाग लेने के लिए नहीं आती तब भी वह भारत की स्वतन्त्रता को रोक नहीं सकती और हमें अपना कार्य निर्बाध रूप से आगे चलाना चाहिए । मुझे लगता है यदि देश स्वतन्त्र होगा, तो वह स्वतन्त्रता संवैधानिक साधनों से प्राप्त नहीं होगी । पिछले कुछ दिनों की घटनाओं को दृष्टि में रख कर स्पष्ट लगता है कि हमारा काम इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसानी से नहीं हो सकता। मगर मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि जो कुछ भी करना होगा इसी संविधान सभा द्वारा करना होगा। अन्त में हमें अपना उत्तरदायित्व स्वयं ही संभालना होगा और एक ऐसे संविधान की रचना करनी होगी, जिसे हम विश्व ब्रजन मत के सामने प्रस्तुत कर सकें और सभी को इस बात का संतोष दे सकें कि हमने भारत की सम्पूर्ण जनता, अल्पसंख्यकों और अन्य सभी से न्यायपूर्ण और समान आधार पर व्यवहार किया है।

जब हम अल्पसंख्यकों की बात करते हैं तब यह सुझाया जाता है कि मुस्लिम लीग ही केवल मात्र अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करती है। मगर वास्तविकता यह नहीं है। अन्य अल्पसंख्यक भी हैं। अगर अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करनी है, तो इनमें वह सभी अधिकार आने चाहिए जो सभी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित हों और जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों में हो सकते हैं।

मुस्लिम लीग एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। यह वर्ग शायद मुस्लिम समाज का बहुत बड़ा वर्ग हो सकता है। मगर, यह कहना नितान्त भ्रामक है कि यह संविधान सभा केवल एक वर्ग, सबर्ण हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करती है, जैसे हिन्दुओं के उच्च वर्ग केवल दूसरों का दमन करने और किसी ऐसे विधान की रचना करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं, जो सम्पूर्ण भारत के लिए विनाशकारी सिद्ध होगा। क्या यह समझा जाय कि यदि भारतीय जनता का एक वर्ग इस संविधान सभा से अलग रहने का फैसला करता है, तो सम्पूर्ण भारत को गुलाम देश रहना चाहिए ?

अंग्रेजों को चेतावनी

हमें अंग्रेजों से एक ही बार कह देना चाहिए — हम आपके मित्र रहना चाहते हैं। आपने इस देश में अपना व्यवहार व्यापारी के रूप में आरम्भ किया। आप मुगल बादशाहों के सामने आवेदक के रूप में आये। आप इस देश की सम्पत्ति को उपयोग करने की अभिलाषा रखते थे। भाग्य आपके अनुकूल था। जालसाजी, धोखा और बलात्कार से आप इस देश में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुए, न कि इस देश की जनता की इच्छा और सहयोग से। आपने पृथक मतदाता सूची तैयार की। आपने राजनीति में मजहब का प्रवेश करा दिया। यह भारतीयों ने नहीं किया, आपने किया ताकि आपका शासन अधिक समय तक टिक सके। आपने इस देश में कुछ निहित स्वार्थों को उत्पन्न किया, जो अब इतने शक्तिशाली हो गये हैं कि उन्हें अपनी इच्छा से नष्ट नहीं किया जा सकता। इस सब के बावजूद यदि आप चाहते हैं कि भविष्य में भारत आपका मित्र रहे, तो हम आपका सहयोगी हाथ स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं। मगर ईश्वर के लिए आप हमारी घरेलू समस्याओं में हस्तक्षेप न करें। हर देश की घरेलू समस्याएं होती हैं और दुर्भाग्य से भारत की भी हैं। इन घरेलू समस्याओं का हल इसी देश के लोगों के द्वारा निकाला जाना चाहिए।

(१७ दिसम्बर, १९४६)

हमारी अनेक भाषाएं हमारा वैभव हैं

भारत अनेक भाषाओं का देश रहा है। अगर हम अतीत की गहराइयों में जायें, तो यह स्पष्ट हो जायगा कि किसी के लिए इस देश पर एक ही भाषा थोपना संभव नहीं हो सका। कुछ लोग चाहते हैं कि एक दिन ऐसा भी आ सकता है जब भारत में केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही भाषा बोली जायगी। स्पष्ट बात तो यह है कि मुझे इस संभावना पर विश्वास नहीं। किन्तु जब मैं यह कहता हूं, तो मैं वह राष्ट्रीय एकता स्थापित करने की परमावश्यकता की उपेक्षा नहीं करता, जो हमारे भावी पुनर्निर्माण की आधारशिला होनी चाहिए। वह एकता, राष्ट्रीय जीवन के उन तत्वों को, जो आज आवश्यक हैं, गरिमा, समरसता और आत्मसम्मान के साथ कार्यरत करने से प्राप्त होनी चाहिए। आज यह हमारा वैभव है कि हमारे पास इतनी भाषाएं हैं, जो उत्तर से दक्षिण तक और पश्चिम से पूर्व तक फैली हैं और जिनमें से प्रत्येक ने आज के भारतीय जीवन और सभ्यता में अपने ढंग से योगदान किया है।

यदि कोई व्यक्ति यह दावा करता है कि भारत के संविधान में एक धारा पारित करवाने से सम्पूर्ण भारतीय समाज एक भाषा स्वीकार कर लेगा, तो मैं कहूंगा कि यह संभव नहीं। अनेकता में एकता ही भारत की विशेषता है और वह एकता सहमति एवं समझदारी से प्राप्त होनी चाहिए। उसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाना होगा।

हिन्दी ही स्वीकार क्यों ?

हम हिन्दी ही क्यों स्वीकार करते हैं? इसलिए नहीं कि यह निश्चित रूप से सबसे अच्छी भारतीय भाषा है। मुख्य कारण तो यह है कि यही एक भाषा भारत के बहुसंख्यक वर्ग द्वारा समझी जाती है। अगर ३० करोड़ में से १४ करोड़ लोग हिन्दी भाषा को समझते हैं, तो हम कहते हैं कि हमें वह भाषा सम्पूर्ण भारत के लिए स्वीकार करनी चाहिए। मगर उसे व्यवहार में लाना होगा। अंतरिम अवधि में इससे हमारे सरकारी कार्य संचालन और प्रशासन में बाधा उपस्थित न हो और भविष्य में किसी भी समय भारत और उसकी अन्य भाषाओं की प्रगति में अवरोधन न आ जाय।

अगर मैं ऐसे प्रदेश का रहने वाला होता जहां हिन्दी बोली जाती है, तो मुझे इस समझौते से बड़ा गर्व महसूस होता कि सभा के प्रायः सभी सदस्यों ने देवनागरी लिपि में हिन्दी को स्वेच्छा से स्वतंत्र भारत की सरकारी भाषा स्वीकार किया है। यह एक ठोस उपलब्धि है, जिसका महत्व मेरे उन मित्रों को समझना चाहिए, जो हिन्दी भाषी प्रदेशों से आये हैं।

संस्कृत के लिए सम्मान

मैं अन्य भाषाओं के दावे की बात नहीं करता। यदि मुझ पर ही सब कुछ छोड़ा जाय, तो मैं संस्कृत को प्राथमिकता दूंगा। लोग आजकल संस्कृत पर हंसते हैं। शायद इसलिए कि उनके विचार में यह भाषा उन सब उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकती जो आधुनिक राज्य में पूरे करने पड़ते हैं। मैं संस्कृत की विशेषताओं की चर्चा नहीं करना चाहता। मगर यह वह भाषा है, जिसमें असीम भंडार है और जिससे हमारे पूर्वजों एवं सम्पूर्ण विश्व के वे सब व्यक्ति, जिन्हें ज्ञान और विद्वता से प्यार है, सब प्रकार का ज्ञान और बौद्धिक जानकारी प्राप्त करते हैं। वही हमारी भाषा, भारत की भाषाओं की जननी है। हम उसे चाहते हैं, न केवल उसे औपचारिक आदर देने या उसकी महानता की प्रशंसा करने के लिए, अपितु अपने राष्ट्रीय हित के लिए ताकि हम उस सम्पत्ति और खजाने को खोज सकें, जो हमने अतीत में संग्रहीत किया और जिसे भविष्य में भी संग्रह करने की आकांक्षा है। हम चाहते हैं कि संस्कृत भारत की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में आदर का स्थान प्राप्त करे।

(१३ सितम्बर, १९४९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

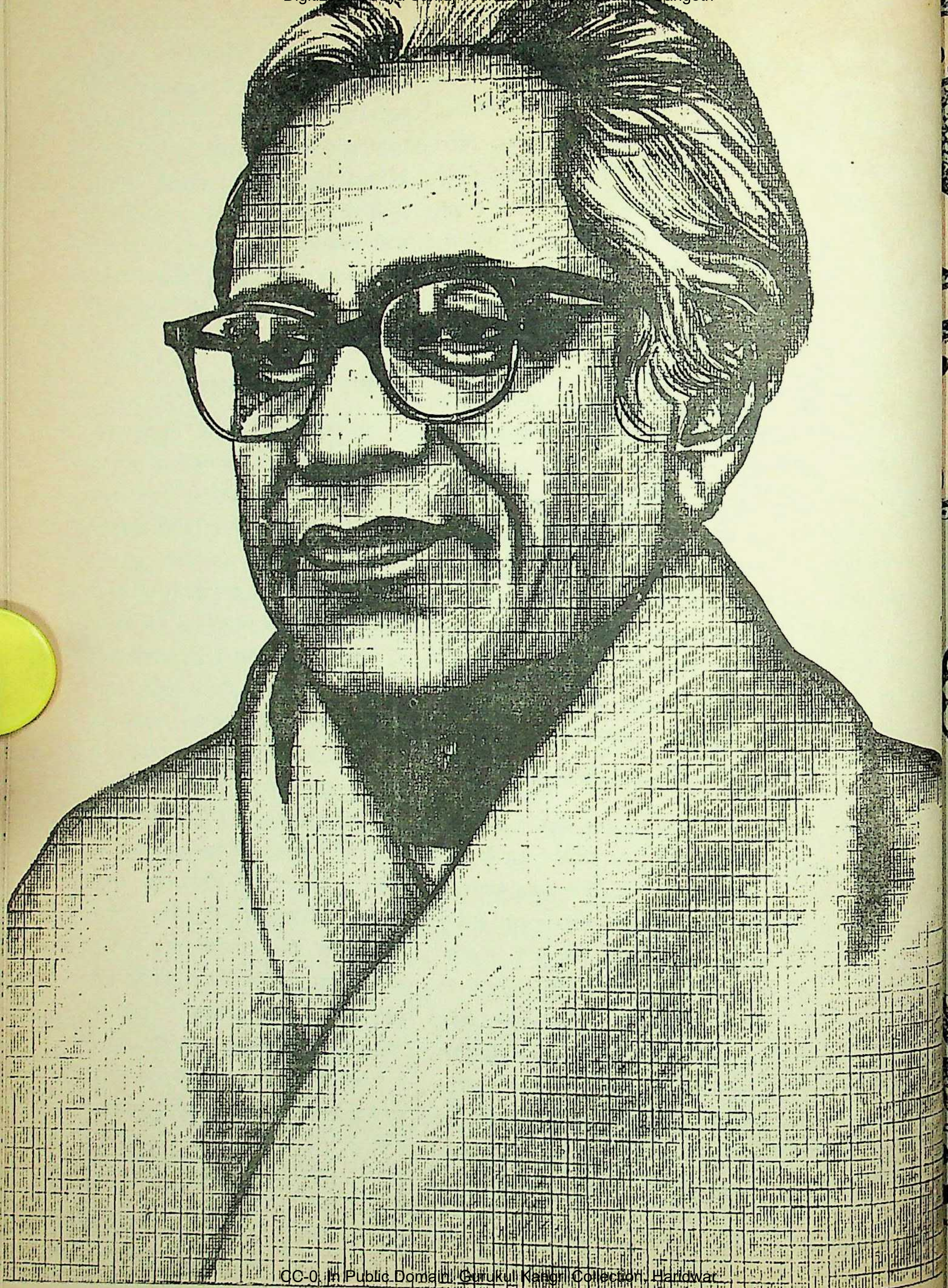

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ और पाथेय

डा० रघुवीर के भाषण से

देश स्वतन्त्र हो गया तथा हम लोकतन्त्री गणतंत्र की स्थापना कर रहे हैं। हमें आश्वासन दिया गया है कि हमारे जीवन काल में ही देश आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में प्रगति कर लेगा। किन्तु अभी एक प्रश्न अनुत्तरित रह गया है। हमारे संविधान में हमारी प्राचीन संस्कृति का कहीं भी उल्लेख क्यों नहीं किया गया है ? यह एक विश्वजनीन सत्य है कि विजयी देश विजित देश पर अपनी सत्ता जमाने के लिए उसके सांस्कृतिक सूत्रों पर प्रहार करके उन्हें सदैव के लिए दुर्बल बनाने का प्रयास करता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह पराधीन देश की भाषा, उसके धर्म तथा ऐतिहासिक आदर्शों पर चोट करता है। ब्रिटिश शासकों ने हमारे साथ भी ऐसा ही किया। उन्होंने हमारे धर्म का अपमान किया और राज्य कार्य में इसे कोई स्थान नहीं दिया। अंग्रेजों तथा उनके पिछलग्गुओं ने संस्कृत भाषा के अति सारगर्भित शब्द 'धर्म' को 'रिलीजन'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का समानार्थी मानकर इसे गर्हित करने का प्रचार किया। धर्म शब्द की तुलना में 'रिलीजन' शब्द बहुत ही संकुचित अर्थ अभिव्यंजित करता है। धर्म को 'रिलीजन' का समानार्थी कदापि नहीं माना जा सकता। 'रिजीजन' का समानार्थी पंथ शब्द हो सकता है, परन्तु अंग्रेजों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए 'रिलीजन' को जानबूझ कर धर्म का समानार्थी बता कर ऐसा प्रचार किया।

अंग्रेजों ने हमारी भाषा को हटा कर हम पर अंग्रेजी को लाद दिया। यह अपरिहार्य है कि अपनी सत्ता दृढ़ करने के लिए अंग्रेजों ने हमारे जिन तत्वों को नष्ट कर दिया उन्हें हमें पुनः स्थापित करना होगा। हमें भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय जीवन में प्रतिष्ठित तथा संविधान की रचना इसमें करनी होगी। तभी भारत अपनी खोयी आत्मा को पुनः प्राप्त करेगा। किन्तु हमारे संविधान में 'धर्म' शब्द का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ। एक मित्र से मैंने जब इस स्थिति का उल्लेख किया, तो वह कहने लगे — 'संविधान कानूनी चीज है। अतः उसमें उन शब्दों का ही उल्लेख किया जा सकता है जिनकी न्यायालयों में व्याख्या की जा सके। किन्तु देश को केवल नये कानूनों की ही आवश्यकता नहीं, अपितु वह उससे बहुत ऊंचे धरातल तक ऊंचा उठ जाना चाहता है।

किसी समय विश्व में हमारा अपना विशेष स्थान और अपना श्रेष्ठ धर्म था। उस समय हम संसार में विश्व गुरू के रूप में सम्पूजित थे। अंग्रेजों ने हमारे उस गौरव को धूल में मिला दिया। इण्डियन सिविल सर्विस के पदाधिकारियों ने भारतीय इतिहास को अति विकृत रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने लिखित इतिहासों में भारतीयों को नितांत असभ्य, बर्बर तथा कापुरुषों के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने सिखाया कि भारतवासी सदैव से विभेद तथा वैमनस्य के आखेट बने रहे और युद्धों में सदा ही पिटे।

इस पृष्ठभूमि में यह और भी आवश्यक हो गया कि सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के प्रस्फुरण एवं अभिव्यक्तिकरण के लिए हम प्रभावी प्रयास करें, परन्तु ऐसा नहीं किया गया। संविधान के प्रारम्भ में ही इसका उल्लेख होना बहुत आवश्यक था। फ्रांस की राज्य क्रांति का राजनीतिक नारा — स्वतन्त्रता, समानता तथा बंधुत्व हमने उठा लिया, किन्तु हमारे देश की जनता को यह नारा क्रान्ति का आह्वान नहीं कर सकता। इसका यह आशय कदापि नहीं कि दूसरे देशों से हम कुछ ग्रहण करें ही नहीं। किन्तु बाहर से हमें वे ही वस्तुएं ग्रहण करनी चाहिए जो हमारे देश के लिए लाभप्रद हों। जब हम तीन विदेशी शब्दों को अपने संविधान में सम्मिलित कर सकते हैं, तो अपने यहां अतिप्राचीन काल से चले आ रहे 'राम राज्य' के आदर्श को, क्यों संविधान में स्थान नहीं दिया जा सकता था, जिसे हमारे ग्रामीण बच्चे भी समझते और उसका आदर करते हैं।

१९३१ में राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) के अध्यक्ष से मैंने कहा था कि आपकी संस्था का ध्येय वाक्य होना चाहिए— 'मा गृधः (लालसा मत करो)।' यह वाक्य ईशोपनिषद् तथा यजुर्वेद में है। इस प्रकार के आदर्श मानव के आध्यात्मिक उत्थान तथा आचरण श्रेष्ठता के एक प्रदीप हैं और इस भौतिक-आध्यात्मिक आवश्यकताओं की संपूर्ति करते हैं। हमारे संविधान में इनका कोई उल्लेख नहीं किया गया। हमारा ही देश गणतन्त्र की जन्मभूमि का देश है तथा यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्धति विश्व के अन्य देशों में यहीं से गयी है।

हमारे यहां सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक संगठन भी था, जो योजनाबद्ध रूप से एक नूतन आदर्श के प्रचार में संलग्न था। इसके ध्येय वाक्य थे—'धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।' इसका वास्तविक आशय था—मैं अपने कर्तव्य पथ पर सदैव दृढ़ रहूंगा। मैं यह पूछता हूं कि हमारे संविधान में इन वाक्यों का समावेश क्यों नहीं किया गया? हमारा देश फूट तथा आंतरिक विग्रह से जर्जर हो गया। ऐसी स्थिति में 'सं गच्छध्वम्, सं वदध्वम्, सं वो मनंसि जानताम्' के आदर्शों को जनता के समक्ष प्रस्तुत न करना बड़ा ही खेदजनक है।

एक अन्य आदर्श हमें नरेश अश्वपति के इस कथन से मिलता है :—

नमेस्ते नो जनपदे न कदर्यो नमद्यपः'
नाना हिताग्नि नो विद्वान्ः

अर्थात् मेरे राज्य में न चोर हैं, न डाकू, न कायर, न मद्यप (शराबी) और न अज्ञानी। हमारे संविधान में इन पावन आदर्शों को भी विस्मृत कर दिया गया।

एक और भी भव्य आदर्श है :—

काषार्पणं मवेद् दण्डेयो यत्रान्याः प्राकृतो जनः
तत्र श्रीमान् मवेद दण्डयः सहस्त्रमिति धारणा

इसका तात्पर्य है—एक अपराध के लिए सामान्य व्यक्ति को १०० काषार्पण (मुद्राएं) दण्ड हो, तो एक नरेश या धनिक पर इसी अपराध के लिए एक हजार काषार्पण का दण्ड होना चाहिए। हमारे संविधान निर्माता यदि शासन तन्त्र के अध्ययन के लिए आयरलैण्ड, स्विटजरलैण्ड या अमेरिका के विधानों की खोज कर सकते हैं, तो उन्हें क्या कोई ऐसा व्यक्ति ढूंढने के लिए समय नहीं मिला जो हमारे देश की राजनीतिक परंपरा से परिचित हो। जो यह बताता कि संविधान निर्माण में भारत की अपनी प्राचीन परम्पराएं भी योग दे सकती हैं। इस देश में राजनीतिक दर्शन था जिसने इस देश के जनों के समग्र व्यक्तित्व में प्रवेश किया तथा जिसका उपयोग भारतीय संविधान के निर्माण में करने से देश लाभान्वित होता?

अंग्रेजी का वर्चस्व चल रहा है

यह प्रसन्नता की बात है कि एक भारतीय भाषा को केन्द्र की सरकारी भाषा का पद दिया गया है, परन्तु इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए १५ वर्ष का जो व्यवधान रखा गया है वह बड़ा ही घातक है। जब हमारे देश में स्थित विदेशी राजदूत तथा कूटनीतिज्ञों से मैंने वार्ता की, तो मेरा मस्तक लज्जा से झुक गया। उन्होंने मुझ पर यही व्यंग्य कसा कि आने वाले अनेक वर्षों तक भारत पर अंग्रेजी का साम्राज्यवादी शिकंजा कसा रहेगा। अंग्रेजी का वर्चस्व बनाये रखने का जो निर्णय हमारे संविधान निर्माताओं ने किया, उसे हमारे देश में स्थित एक भी कूटनीतिक प्रतिनिधि ने पसन्द नहीं किया। ये कूटनीतिज्ञ भलीभांति जानते थे कि भाषा तथा राजनीति में चोली-दामन का सम्बन्ध है। यूरोपीय देशों के पृथक राष्ट्रीय अस्तित्व का एकमात्र आधार भाषा ही है। इस कारण वे भलीभांति जानते हैं कि एक देश के जीवन में भाषा का कितना अधिक राजनीतिक महत्व है।

अंग्रेजी को भारत में बनाये रख कर देश को अंग्रेजों से बांध दिया गया और हिन्दी को सरकारी कार्य की भाषा न बनाने देने की पूरी तैयारी कर ली गयी है। हमारे संविधान ने अंग्रेजी को जो स्थान दिया है, वह उसे अंग्रेजी सत्ता के समय भी प्राप्त न था। अब से न केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसद ही अपने समस्त नियम अंग्रेजी में बनायेगीं, अपितु दिल्ली विद्युत संभरण को अपने लघु से लघु नियम भी अंग्रेजी में बनाने पड़ेंगे। हिन्दी का इतना अपमान करके ही संतोष नहीं कर लिया गया। देश पर विदेशी अंक भी थोप दिये गये। हमें यह भुलावा दिया गया कि रोमन में प्रयुक्त अंक भारतीय अंकों के अन्तरराष्ट्रीय रूप हैं। अतः हमें इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे बड़ा अपमान और क्या होगा?

हमारे देश पर अभी तक अफसरशाही का राज्य है, जिसे जनता का सेवक होना चाहिए था। मुकदमेबाजी को समाप्त करने के लिए भी पग नहीं उठाया गया। अंग्रेज अपने शासन के डेढ़ सौ साल में अंग्रेजी की जितनी जड़ें हमारे यहां जमा गये उससे भी दुगुने बल से आगामी १५ वर्षों में अंग्रेजी भारत में जम जायगी। इसका परिणाम यह होगा कि सत्ता अंग्रेजी विज्ञ वर्ग की बपौती बनी रहेगी। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि देश के विकास के लिए अंग्रेजी का उन्मूलन नितान्त अपरिहार्य है।

आज हमारे भूतपूर्व शासक हमारे देश से दूर हैं, पर हमारे मस्तिष्क पर उनका ही राज्य है। भारत में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रारम्भ होने के समय लार्ड मैकाले ने कहा था—'पाश्चात्य शिक्षा भारत में एक ऐसी जाति का निर्माण करेगी जिसकी त्वचा मात्र भारतीय होगी तथा बाकी सभी चीजें अंग्रेजी। देश का यह दुर्भाग्य है कि उक्त भविष्यवाणी सही निकली। हमारे संविधान में भारतीयपन बिल्कुल नहीं, केवल विदेशी आदर्श भर दिये गये हैं।

अखण्ड भारत क्यों नहीं ?

सभी देशी राज्यों का विलय हमने कर लिया, परन्तु देश का विभाजन हमने होने दिया। हमारे संविधान में एक भी ऐसा प्रावधान नहीं, जिसमें कहा गया हो कि देश को फिर संयुक्त किया जायगा। भारत की संस्कृति तथा इतिहास के अध्येता भलीभांति जानते हैं कि भारत की प्राकृतिक सीमाएं वक्षु नदी पर थीं। यूनानियों ने इस नदी को दुकहुम और अंग्रेजों ने आक्सस लिखा है। यह सीमा पीछे हट कर अब रावी पर आ गयी है। मुगलों के समय में भी अफगानिस्तान भारत का अंग था। बंगाल और असम के बीच से पूर्वी बंगाल का भू-खण्ड काट कर हमसे पृथक कर दिया गया है। क्या हम उन्हें पुनः भारत में मिलाने का पवित्र संकल्प नहीं कर सकते? मैं यह नहीं जानता कि यह एकता हम युद्ध से प्राप्त करेंगे या शान्तिपूर्ण उपायों से। कौन-सा मार्ग अपनाया जाय यह भविष्य ही बतायेगा। आज हम यह मंगल संकल्प करेंगे कि विघटित और विभाजित भारत पुनः एक होगा तथा भविष्य में हम इसे और विखंडित न होने देंगे।

एक भी गाय न कटे

सहस्रों वर्ष पूर्व इस मंगल कामना का उद्‌घोष किया गया था कि इस दिव्य भूमि पर एक भी गाय का वध न किया जाय और आज भी इस कामना का गुंजार करोड़ों भारतीयों के मन में हो रहा है। हमारी संस्कृति में अहिंसा को सर्वोच्च स्थान है। न केवल मनुष्यों, अपितु पशुओं की हत्या से भी बचने का विधान है। समस्त ब्रह्माण्ड को एक माना गया है और गो जीवन की एकता का प्रतीक है। ब्रह्महत्या तथा गोहत्या—विद्वान्, वैज्ञानिक, दार्शनिक या ऋषि तथा गाय इनकी हत्या का पाप समान है। पहले बच्चों को तब तक भोजन नहीं दिया जाता था जब तक गाय न खा ले। गाय को परिवार के बालकों से भी अधिक महत्व दिया जाता था, क्योंकि गाय राष्ट्र की माता है। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ और पाथेय

पं० दीनदयाल उपाध्याय की लेखनी से

भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है, एक से अधिक संस्कृतियों का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। आज तक एक-संस्कृति-वाद को सम्प्रदायवाद कह कर ठुकराया गया, किन्तु अब कांग्रेस के विद्वान भी अपनी गलती समझ कर एक-संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखण्डता बनी रह सकती है तथा तभी हम अपनी सम्पूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं। भारत में प्रमुख समस्या सांस्कृतिक ही है। इस दृष्टि से देखें, तो आज भारत में एक संस्कृतिवाद, द्वि-संस्कृतिवाद तथा बहु-संस्कृतिवाद के नाम से तीन वर्ग दिखायी देते हैं। एक-संस्कृतिवाद के पुरस्कर्ता भारत मेंकेवल एक ही भारतीय संस्कृति का अस्तित्व मानते हैं तथा अन्य संस्कृतियों का या तो अस्तित्व ही मानने को तैयार नहीं या उसके लिए आवश्यक समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

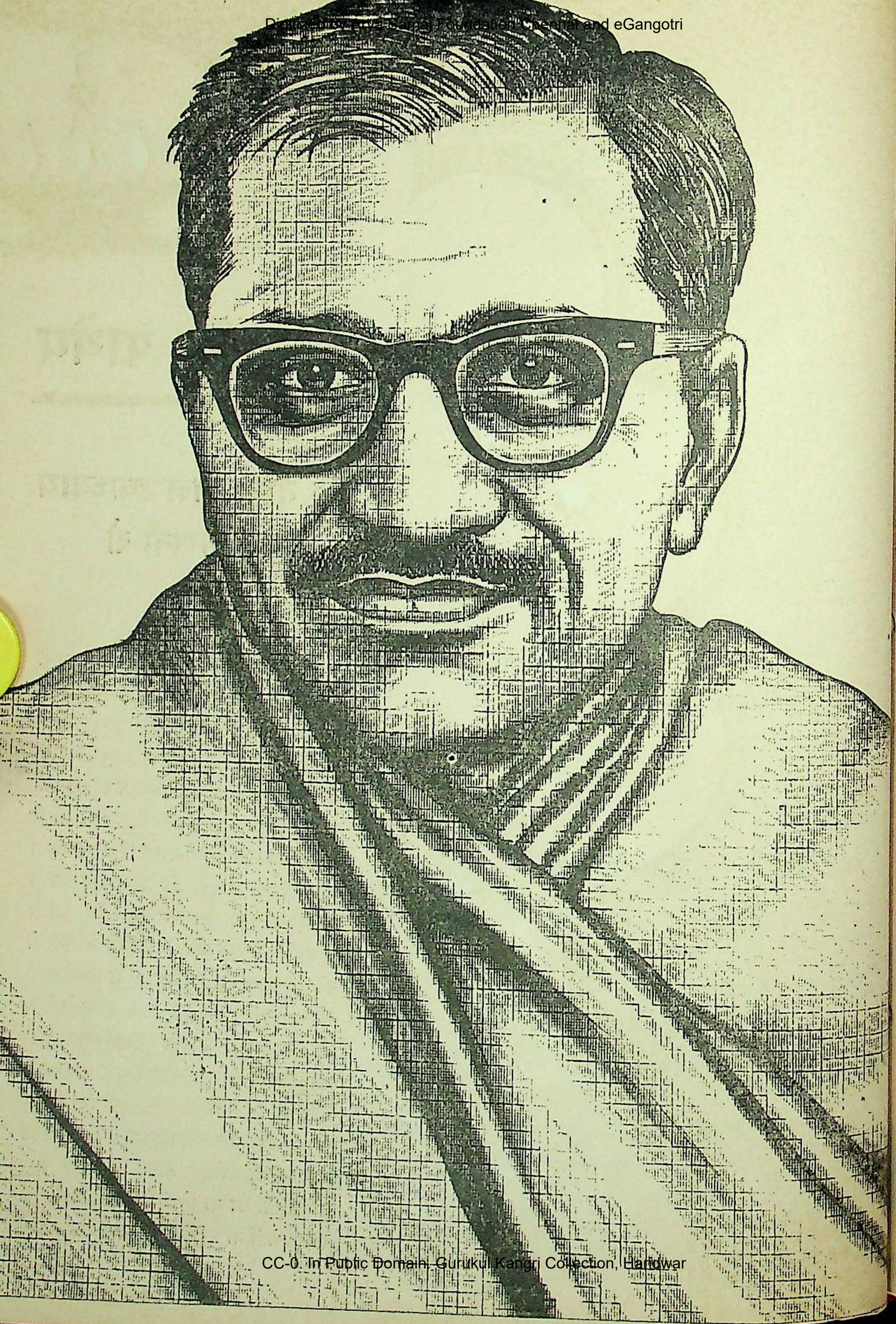

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि वह भारतीय संस्कृति में विलीन हो जाय। प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवादी वे लोग हैं, जो स्पष्टतया तो दो संस्कृतियों का अस्तित्व नहीं मानते, भूल से एक संस्कृति एवं एक राष्ट्र का ही राग अलापते हैं, किन्तु व्यवहार में दो संस्कृतियों को मान कर उनका समन्वय करने का असफल प्रयत्न करते हैं। वे ये तो मान लेते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दो संस्कृतियां हैं, किन्तु उनको मिलाकर एक नवीन हिन्दुस्तानी संस्कृति बनाना चाहते हैं अतः हिन्दी-उर्दू का प्रश्न वे हिन्दुस्तानी बना कर हल करना चाहते हैं तथा अकबर को राष्ट्रपुरुष मान कर अपने राष्ट्र के महापुरुषों का प्रश्न हल करना चाहते हैं। "नमस्ते सलामालेकुम" का काम ये "आदाब अर्ज" से चला लेना चाहते हैं।

दो संस्कृतियों के मिलाने के अब तक असफल प्रयत्न हुए हैं, किन्तु परिणाम विघातक ही रहा है। मुख्य कारण यह है कि जिसको मुस्लिम संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है वह किसी मजहब की संस्कृति न होकर अनेक अभारतीय संस्कृतियों का समुच्चय मात्र है। फलतः उसमें विदेशीपन है, जिसका मेल भारतीयत्व से बैठना कठिन ही नहीं, असंभव भी है। इसलिए यदि भारत में एक संस्कृति एवं एक राष्ट्र को मानना है, तो वह भारतीय संस्कृति एवं भारतीय हिन्दू राष्ट्र, जिसके अन्तर्गत मुसलमान भी आ सकते हैं, के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।

राजनीति की भूल

भारतीय राजनीतिज्ञों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे भारत के भिन्न-भिन्न वर्गों का स्वतन्त्र अस्तित्व मानते हैं। उनके इस अस्तित्व को स्वीकार करके फिर वे इस बात का प्रयत्न करते हैं कि यह अस्तित्व किस प्रकार राष्ट्र के हितार्थ काम में आये। आज तक उनका सम्पूर्ण प्रयत्न इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र मानी हुई इकाइयों के बीच एकता और सामंजस्य स्थापित करने का ही रहा है। उनमें महत्तम समापवर्तक ढूंढने का उन्होंने प्रयत्न किया है, किन्तु संख्याएं इतनी रूढ़ होती जाती हैं कि उनका समापवर्तक ही नहीं मिल पाता। किसी भी वर्ग के अस्तित्व को, जो कि वास्तविक नही है संकट न पहुंचाते हुए, बल्कि उनका संवर्धन ही करते हुए, आज तक के राजनीतिक प्रश्न हल करने का प्रयत्न किया गया है और उसका परिणाम सदा ही असफलता के रूप में आया है।

अंग्रेजों के राज्यकाल में हमने यह स्वीकार किया कि देश में मुसलमान, ईसाई आदि अनेक वर्ग हैं तथा उनके स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा करते हुए ही राष्ट्रीयता का निर्माण हो सकेगा। वास्तव में राष्ट्रीयता के स्तर पर उनका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करना एक बड़ी भारी भूल है, क्योंकि मुसलमान, ईसाई आदि का वर्गीकरण मजहब के आधार पर करना राष्ट्रीयता से भिन्न बात है। एक मजहब के मानने वाले अनेक राष्ट्रों के 'अंग' हो सकते हैं और एक ही राष्ट्र में अनेक मजहब के मानने वालों का समावेश हो सकता है। राष्ट्रीयता यदि कोई शक्तिशाली प्रेरणा है, तो उसके चेतना-क्षेत्र में मजहब का प्रवेश नहीं होता, किन्तु आजकल हमारा प्रयत्न यही रहा है कि इन वर्गों का स्वतंत्र अस्तित्व मान कर उनका एकीकरण करें, ऐसा एकीकरण, जिसमें किसी को कुछ भी न छोड़ना पड़े। मजे की बात यह है कि वह, जो सबको मिला कर एक बनाने वाले हैं, उनकी भी स्पष्ट कल्पना किसी को नहीं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक बार कहा है कि स्वतन्त्र भारत का राज्य न हिन्दू का होगा न मुसलमान का और न ईसाई ही का। प्रश्न आता है कि फिर किसका होगा? इसका उत्तर बहुत लोगों ने यह कह कर देने का प्रयत्न किया है कि वह "हिन्दुस्तानियों" का होगा। किन्तु फिर झगड़ा आता है कि वह हिन्दुस्तानी कौन? इसमें किसका कितना समावेश होगा? और किस आधार पर होगा? क्या संख्या-बल के आधार पर या और किसी आधार पर? अभी तक हमने संख्या-बल का आधार माना है तथा जिस-जिस चीज को ये वर्ग अपना कह कर खड़े हुए हैं उनको मिलाने का प्रयत्न किया है। अंग्रेजों से होने वाले सभी समझौतों तथा उस काल के सभी आन्दोलनों में वही प्रश्न मुख्य रहा है तथा उसका परिणाम "पाकिस्तान" हुआ, यह मानने में किसी समझदार व्यक्ति को आपत्ति न होगी।

वर्गीकरण ही गलत

इस प्रकार वर्गीकरण केवल साम्प्रदायिक आधार पर ही नहीं, भाषा और आर्थिक आधारों पर भी किया जाता है। आज हमारे सभी नेता यह मान कर चलते हैं कि प्रत्येक भाषा-भाषी वर्ग का एक स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा ऐसे अनेकों स्वतंत्र वर्गों को मिला कर समूचे भारत की रचना करनी चाहिए। इसी का परिणाम हमारी इण्डियन यूनियन तथा उसका प्रस्तुत विधान है। इस कल्पना ने "प्रान्तीय स्वतन्त्रता" नाम के सिद्धान्त को जन्म दिया है तथा आज जब प्रान्तों का एक भी अधिकार केन्द्र अपने हाथ में लेता है, तो प्रान्त-प्रतिनिधि प्रान्तीय स्वतन्त्रता की दुहाई देकर प्रान्तों को म्यूनिसिपैलिटी के समकक्ष बनाने के प्रयत्नों की निन्दा करने लगते हैं। साम्प्रदायिक स्वतन्त्रता का परिणाम यदि पाकिस्तान हुआ है, तो इस प्रान्तीय स्वतन्त्रता का परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बतायेगा।

आर्थिक आधार पर ही स्वतन्त्र वर्गों की कल्पना की जाती है। एक जमींदार, तो दूसरा कृषक, एक पूंजीपति, तो दूसरा मजदूर, एक शोषक, तो दूसरा शोषित। इस प्रकार का वर्गीकरण करके या तो एक को दबा कर दूसरे का प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न होता है या अधिक से अधिक दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है।

उपर्युक्त सभी एवं ऐसे अनेक वर्ग, जिनको राजनीतिज्ञ, कठोर सत्य मानकर चलते हैं, वास्तव में मिथ्या है तथा जब तक उनका अस्तित्व मान कर, उनको संतुष्ट करने की नीति अपना कर उनके अहंकार और स्वार्थ की वृद्धि करते रहेंगे तब तक राजनीति विपरीत दिशा में बहती रहेगी। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण भारत एक है तथा भारत की सम्पूर्ण सन्तान एक है और उसको इस एकता का अनुभव करते हुए रहना चाहिए। अनेक अंगों को इकट्ठा करके शरीर की सृष्टि नहीं होती, किन्तु शरीर के अनेक अंग होते हैं और इसलिए प्रत्येक अवयव अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए नहीं, अपितु शरीर के अस्तित्व के लिए प्रयत्न करता है। इस प्रकार राष्ट्र के सभी अंगों को अपनी रूप-रेखा, राष्ट्रीय स्वरूप और हितों के अनुकूल बनानी चाहिए न कि राष्ट्र को ही इन अंगों के अनुसार काटा-छांटा जाय। सम्प्रदायों, प्रान्तों, भाषाओं और वर्गों का तभी तक मूल्य है जब तक वे राष्ट्र-हित के अनुकूल हैं अन्यथा उनका बलिदान करके भी राष्ट्र की एकता की रक्षा करनी होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकेच्छा वास्तव में एक भाववाचक कल्पना मात्र है। सच तो यह है कि जनतन्त्र में किसी की भी इच्छा नहीं चलती। प्रत्येक को एक सामान्य इच्छा के अनुसार अपनी इच्छा को ढालना होता है। यदि ऐसा न हो तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं, मान्यताओं और विश्वासों को ही सर्वोपरि मान कर अड़ा रहे, तो लोकतन्त्र नहीं चल सकेगा। अराजकता, विघटन और अन्त में एकतन्त्रीय निरंकुश शासन इस स्थिति के अवश्यंभावी परिणाम होंगे।

समय को अपनायें

अपनी इच्छाओं पर दमन का अर्थ है, दूसरे की बात को मानने की तैयारी। लोकतन्त्र की एक व्याख्या यह की गयी है कि वह वाद-विवाद के द्वारा चलने वाला राज्य है। "वादे-वादे जायते तत्व बोध:" यह हमारे यहां कि पुरानी उक्ति है। किन्तु यह तत्व-बोध तो तभी हो सकेगा जब हम दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनेंगे और उसमें जो सत्यांश होगा उसको ग्रहण करने की इच्छा रखेंगे। यदि दूसरे का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न न करते हुए हम अपने ही दृष्टिकोण का आग्रह करते जायं, तो "वादे-वादे जायते कण्ठशोष:" की उक्ति चरितार्थ होगी। वाल्टेयर ने जब यह कहा कि "मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता। किन्तु अपनी बात कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं सम्पूर्ण शक्ति से लड़ंगा" तो उसने मनुष्य के केवल कण्ठशोष के अधिकार को ही स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति इससे आगे बढ़कर वाद-विवाद को "तत्वबोध" के साधन के रूप में देखती है।

लोकमत का परिष्कार कौन करे ?

दूसरे की इच्छा के सामने झुकने की तैयारी में एक खतरा सदैव बना रहता है।

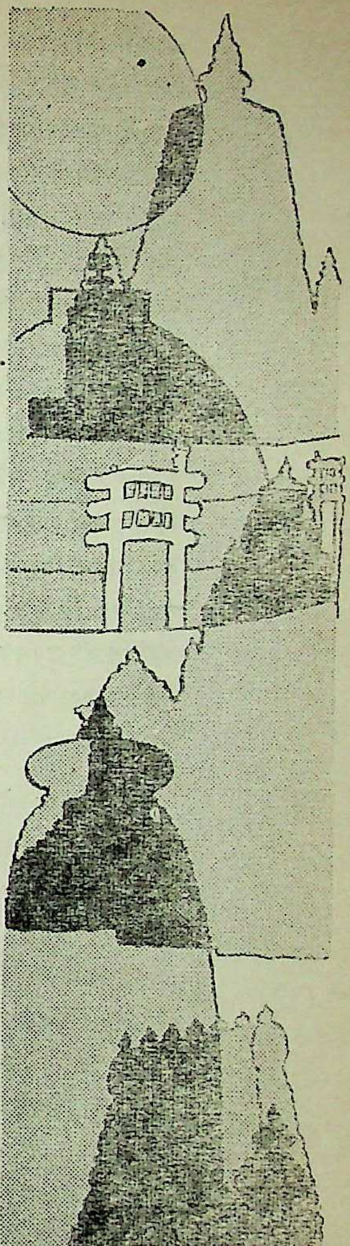

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो सज्जन एवं धर्मभीरु होते हैं वे तो सदैव अपनी बात का आग्रह छोड़कर दूसरों की बात मान लेते हैं, किन्तु जो दुर्जन एवं दुराग्रही हैं वे अपना हठ नहीं त्यागते। फलतः ऐसे ही लोगों की तूती बोलने लगती है। वे अपनी बात मनवा कर समाज के अगुआ बन जाते हैं तथा धीरे-धीरे लोकतन्त्र एक विकृत रूप में उपस्थित होकर समाज के लिए कष्टदायक हो जाता है। सम्भवतया इसी संकट को सामने रखकर हमारे यहां के शास्त्रकारों ने लोकमत-परिष्कार की व्यवस्था की। जिस समाज में यह परिष्कार का काम चलता रहेगा, वहां सहिष्णु एवं संयमशील व्यक्तियों का मण्डल निरन्तर बढ़ता चला जायगा। यहां तक कि इन गुणों से वंचित व्यक्ति क्वचित ही उपलब्ध हो सकेंगे। यदि कोई अपवाद रहा भी, तो वह अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकेगा।

किन्तु यह लोकमत परिष्कार का काम कौन करे ? रूस एवं अन्य साम्यवादी देशों में यह काम राज्य के द्वारा किया जाता है। मार्क्स के सिद्धान्त के अनुसार मजदूरों की क्रान्ति के पश्चात् फिर क्रान्ति की संभावना है, उसे रोकने के लिए कठोर उपायों के अवलम्बन की आवश्यकता है। साथ ही अभी तक जीवन के जो मूल्य स्थापित हुए हैं वे पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था पर आधारित हैं। उन्हें हटा कर नये प्रगतिवादी मूल्यों की प्रतिष्ठापना करनी होगी। यह कार्य लेनिन ने राज्य को, जो कि सर्वहारा के प्रतिनिधियों एवं क्रान्ति-दर्शी महानुभावों के द्वारा चलाया जाता है, सौंपा। किन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि वहां लोकमत परिष्कार के नाम पर व्यक्ति की सभी स्वतन्त्रताएं समाप्त हो गयीं तथा कुछ व्यक्तियों की तानाशाही ही सम्पूर्ण जनता की इच्छा के नाम पर चलने लगी। जो दवा दी गयी, उससे मर्ज तो ठीक नहीं हुआ, हां, मरीज अवश्य चल बसा। अर्थात् समस्याएं दोनों ओर हैं। एक ओर अपरिचित लोकमत, जिसकी दिशा कभी सोच-विचार कर निश्चित नहीं होती और दूसरी ओर व्यक्ति की स्वतन्त्रता की समाप्ति। शेक्सपियर ने अपने नाटक 'जूलियस सीजर' में प्रथम अवस्था का बड़ी अच्छी तरह चित्रण किया है। जो जनता ब्रुट्स के साथ होकर जूलियस सीजर के वध पर हर्ष मना रही थी वही थोड़ी देर में ऐण्टोनिको के भाषण के उपरान्त ब्रट्स का वध करने को उद्यत हो गयी। मोबोक्रेसी और ओटोक्रेसी के दोनों पाटों के बीच से डेमोक्रेसी को जीवित रखना एक कठिन समस्या है।

धर्म का नियन्त्रण आवश्यक

भारत ने समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत-निर्माण के साधन छीन कर किया है। लोकमत-परिष्कार का कार्य है वीतराग द्वन्द्वातीत सन्यासियों का। लोकमत के अनुसार चलने का काम है राज्य का। संन्यासी सदैव धर्म के तत्वों के अनुसार जनता के ऐहिक एवं आध्यात्मिक समुत्कर्ष की कामना लेकर अपने वचनों एवं निरीह आचरण से जन-जीवन के ऊपर संस्कार डालते रहते हैं। उन्हें धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान कराते रहते हैं। उनके समक्ष कोई मोह और लोभ न होने के कारण वे सत्य का आचरण सहज ही कर सकते हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन-मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। इन मूल्यों का बोध रहने के बाद लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण करके संकट का कारण नहीं बनेगी।

अब सबसे अधिक महत्व है जनता को सुसंस्कृत करने का। जब तक इस काम को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले संगठन एवं महापुरुष राज्य के मोह से दूर तथा भय-विमुक्त रहेंगे—तब तक वह सही दिशा में ही चलता जायगा।

इसके लिए धर्मराज्य की स्थापना जरूरी है। धर्मराज्य में भूमि की एकता, अखण्डता और उसके प्रति श्रद्धा प्रमुख रूप से विद्यमान रहेगी। धर्मराज्य कभी संकुचित होकर नहीं चल सकता। अति तुच्छ वस्तुओं को पूज्य बना देने का धर्म का गुण है। भूमि की ओर अत्यन्त श्रद्धा और आदर से देखना इसी गुण की करामात है। निःस्वार्थ देशभक्ति धर्मातीत नहीं हो सकती। लोकाराधन धर्मराज्य का एकमेव उद्देश्य रहता है। **एक भी जन के भूखे रहते हुए धर्मानुयायी शासक को भोजन करने का अधिकार नहीं।** लोकरंजन के कारण ही 'राजा' की संज्ञा शासक को प्राप्त हुई है। धर्मनीति मूलतः लोकनीति होगी। धर्माभाव जन को विभक्त न देखकर उनका सम्पूर्णता के साथ विचार करता है। देह और अवयव के समान ही लोक एवं लोक-संस्थाओं तथा विभिन्न आधार पर बने हुए उनके विविध वर्गों का सम्बन्ध रहता है। न तो अंग की ही अवहेलना की जा सकती है और न देह की। फूल का अस्तित्व पंखुड़ियों से है तथा पंखुड़ियों की शोभा तथा जीवन की सार्थकता पुष्प के साथ उसके स्वरूप को बनाने और निखारने में है। पृथकतावाद के लिए यहा गुंजाइश नहीं। सांस्कृतिक दृष्टि से भी धर्म एकात्मवादी है। जीवन की एकात्मता की अनुभूति ही भारतीय संस्कृति कीं विशेषता है तथा इस भाव से अनुस्युत आचारसंहिता ही धर्म है। निश्चित ही इस आचारसंहिता का लक्ष्य समष्टि का संरक्षण तथा व्यक्ति का विकास होगा। व्यक्ति और समाज में एक को ही बना कर चलना एकांगी है। भारतीय संस्कृति दोनों के हितों को समान रूप से साधती है।

धर्मराज्य शक्तियों के विकेन्द्रीकरण अथवा सुनियोजीकरण में विश्वास रखता है। 'राजा करे सो न्याय' का सिद्धान्त यहां मान्य नहीं, अपितु राजा को न्याय करना चाहिए। न्याय क्या है, इसका निर्णय राज्य नहीं, अपितु धर्म करेगा। आज की परिभाषा में इसे संवैधानिक शासन कह सकते हैं। किन्तु अन्तर इतना ही है कि आज का संविधान साधारण मनुष्यों के द्वारा वनाया हुआ तथा उनके हाथ का खिलौना बन गया है। अतः वे उसे मनमाने ढंग से बदलते रहते हैं। फलतः आज संविधान के अनुसार शासन होने के स्थान पर शासन के अनुसार संविधान, यही स्थिति हो गयी है। धर्म के सिद्धान्त द्वन्द्वातीत महापुरुषों द्वारा सृष्टि के गूढ़ रहस्यों का अन्तर्दृष्टि साक्षात्कार करने के उपरान्त निश्चित होते हैं। यहां लिखित नियम से अधिक अलिखित नियम का प्राधान्य रहता है। समाज अपने व्यवहार से अपनी आत्मा को अभिव्यक्त करता रहता है। नियम अथवा स्मृतियां समाज के इस अंतराल का प्रक्षेपण मात्र होनी चाहिए। समाज स्वयं धर्मसम्मत शिष्टानुमोदित आचार का अनुगामी होने के कारण व्यवहार में कभी स्वैरभाव या स्वच्छन्दता नहीं दिखाता। इस प्रकार मोबोक्रेसी और आटोक्रेसी दोनों की बुराइयों से बच जाता है।

धर्मराज्य आज के प्रजातन्त्र से भिन्न है। प्रजारंजन राजा का कर्तव्य होने के उपरान्त भी वह मूलतः धर्म से नियन्त्रित है। प्रजा का भी नियन्त्रण धर्म से होता है। जैसे धर्मानुयायी प्रजाजन को दंड देने अथवा हटाने का अधिकार राजा को नहीं वैसे ही धर्मपालक राजा को हटाने का अधिकार प्रजा को नहीं है। ■ ■

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ और पाथेय

डा. वी. के. जान के भाषणों से

इस देश में शुरू से ही यह भावनाएं रही हैं कि गोवध नहीं होना चाहिए। यदि आप यह सिद्ध कर दें कि गाय की रक्षा करना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है, तो कोई भी व्यक्ति उसे मांस के लिए नहीं बेचेगा। यदि गाय लाभकारी हो जाय, तो आप उसकी रक्षा जनता पर छोड़ सकते हैं। यदि आम आदमी की समझ में यह आ जाय कि गाय, बछड़ा या बैल उसके लिए लाभकारी है, तो वह उसे वध के लिए नहीं देगा।

परन्तु, इस देश की जनता की भावनाएं दूसरे देश की जनभावनाओं से अलग हो सकती हैं। इस दृष्टि से मैं अमरीकी, ब्रिटिश या अन्य समाजों की आलोचना नहीं कर रहा। परन्तु, हमारे देश में प्रारम्भ से ही ये भावनाएं हैं। मैं सदा इस बात का समर्थक रहा हूं कि सरकार द्वारा गोवध बंध करना चाहिए और इस सिद्धांत को हमने अपने संविधान के अनुच्छेद ४८ में समाहित किया है। इसलिए मेरा सुझाव है कि दस वर्षीय अवधि को रद्द कर गोवध तुरन्त बंद कर देना चाहिए।

मेरी इच्छा है कि पूर्ण गो वध बन्दी का विधेयक कृषि-अर्थव्यवस्था के रूप में न लाकर उसे स्वदेश की अधिकांश जनता की भावनाओं के रक्षण के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। यह मजहबी भावना का सवाल बिल्कुल नहीं है।

हमारे देश में उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक यह भावना व्याप्त है, जिसे मजहबी नहीं कहा जा सकता कि गोवध नहीं होना चाहिए और गौ मांस नहीं खाया जाना चाहिए।

इस देश में बौद्ध, जैन, मुस्लिम, ईसाई तथा अन्य सभी वर्गों के अधिकांश लोग गोवध बन्दी के पक्ष में हैं। इसलिए मेरा अनुरोध है कि सरकार को पूर्णरूपेण गोवध बन्दी घोषित कर देनी चाहिए। इस कदम को अधिकांश जनता का समर्थन मिलेगा।

मेरी राय में यह गलत कदम होगा कि विधेयक का आधार केवल यह रखा जाय कि अलाभकारी गायों का मांस के लिए वध होगा। क्योंकि लाभकारी गाय का वध तो कोई पागल व्यक्ति ही कर सकता है। यदि गाय लाभकारी है, तो उसके वध को रोकने के लिए कानून की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी, परन्तु यदि भावनाओं के आधार पर गोवध बन्द किया जाता है, तो मैं कहता हूं कि पशु-पालन के लिए संस्थान बनाओ।

महात्मा गांधी ने कहा था—"सरकार खुलेबाजार में बिक्री के लिए आयी प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाय को खरीद ले। मैं इस विधेयक के सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना चाहूंगा कि यह विधेयक तब तक सफल नहीं होगा जब तक सरकार ऐसे संस्थाओं की स्थापना नहीं करती, जो उस हर गरीब व्यक्ति से पशु को खरीद ले जो उसके पालन-पोषण में असमर्थ है। इसके बिना केवल यह विधेयक पास करने से काम नहीं चलेगा कि गोवध किसी भी रूप में नहीं हो सकता। पशु रखने वाले गरीब व्यक्तियों का क्या होगा? उनसे पशुओं के खरीदने कीव्यवस्था करनी चाहिए।

सरकार व्यापारी न बने

एक बार संसद में कहा गया कि सरकार को ४५ करोड़ रुपये की हानि हुई। सरकार को यह समझ कर चलना चाहिए कि वह व्यापार के लिए असमर्थ है। यह कार्य व्यापारी वर्ग को ही करने देना चाहिए। वह इस कार्य को बिना किसी हानि के करता है। यथासम्भव सरकार को व्यापार करने से बचना चाहिए। मुझे समझ नहीं आती कि हम निजी कारोबारियों को चावल व गेहूं खरीद कर उन्हें निर्धारित मूल्य पर बेचने को क्यों नहीं कहते? हम (सरकार) स्वयं व्यापार में क्यों फंसते हैं? व्यापारी कोई विदेशी नहीं हैं। वे भी इसी देश के नागरिक हैं।

कृषि-समस्या

कृषि-समस्या के समाधान का एक सरल तरीका है। मैंने विश्व के अनेक देशों में हुए भूमि-सुधारों का अध्ययन किया है। सरलतम उपाय यह है कि भू-स्वामी को मामूली मुआवजा देकर वास्तविक काश्तकारों को भूमि का स्वामीत्व सौंप दिया जाय। मुआवजा नकदी या बांड के रूप में दिया जा सकता है। सरकार बाद में किसानों से किश्तों में धन संग्रह कर सकती है। काश्तकार काम करें और धन कमायें तथा सरकार को धन दें। यह कोई धर्मार्थ कार्य नहीं। इसे सहायता के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि इसे पुनर्वास समझना चाहिए। इसी प्रकार विश्व के अन्य देशों में भी भूमि-सुधार लागू किये गये हैं।

केन्द्र और राज्यों में कांग्रेस ने जो कदम उठाये हैं उनसे उद्योगों में निजी विनियोजन को नष्ट कर दिया है। सभी कार्यों को सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लाया जा रहा है और उसे गलत नाम "सार्वजनिक क्षेत्र" दिया गया है। निजी क्षेत्र को समाप्त कर सरकारी क्षेत्र को बढ़ाया जा रहा है। कृषि क्षेत्र में भी इस प्रकार के कदम उठाये जा रहे हैं। इससे सारा देश तबाह हो जायगा।

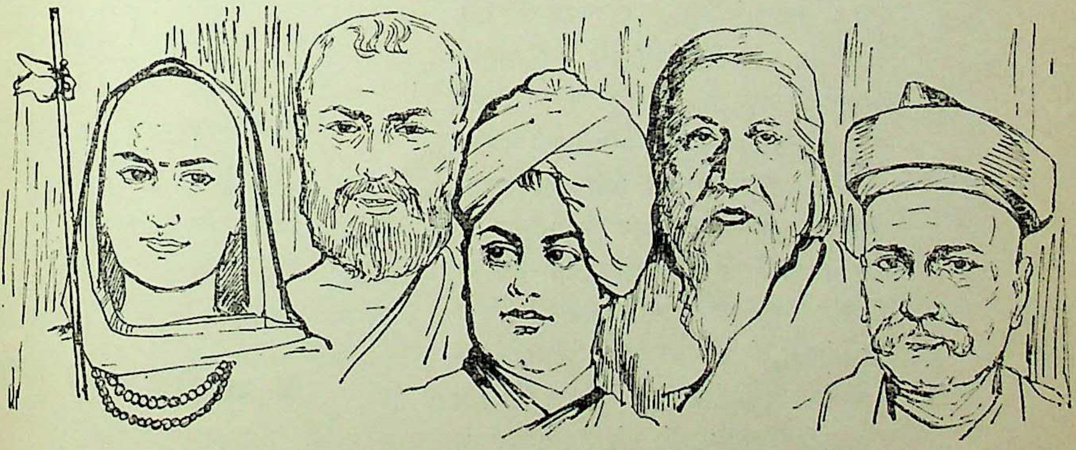

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यावधि चुनाव और उसके बाद

● जगदीश प्रसाद माथुर
कार्यालयमंत्री

१९६७ के आम चुनाव में कांग्रेस को भारी हार का सामना करना पड़ा। बंगाल से लेकर पंजाब तक फैले देश के लगभग आधे क्षेत्र से कांग्रेस का शासन समाप्त हो गया था। दिल्ली और तमिल-नाडु को छोड़कर सात प्रदेशों में समय के आगे-पीछे संयुक्त सरकारें बनीं। यदि राज-स्थान के राज्यपाल महोदय ने कांग्रेस के पक्ष में हस्तक्षेप न किया होता, तो वहां भी विरोधी दलों की सरकार बनने की स्थिति थी। केरल को छोड़कर शेष ६ संयुक्त सर-कारें गिर चुकी हैं। उनमें से पांच प्रदेशों में मध्यावधि चुनाव भी हो चुके हैं। पंजाब में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनसंघ और अकालियों की तथा बंगाल में वामपंथी संयुक्त मोर्चे की तथा हरियाणा, उत्तरप्रदेश तथा बिहार में कांग्रेस के नेतृत्व में सरकारें चल रही हैं। मध्यप्रदेश में भी संयुक्त विधायक दल की सरकार के हटने के पश्चात् कांग्रेस सत्तारूढ़ है।

कुछ लोगों को ऐसा भास होता है कि कांग्रेस पुनः जड़ पकड़ रही है और वह अपनी खोई हुई शक्ति प्राप्त कर सकती है। इसका प्रमुख कारण संयुक्त सरकारों का स्थायी रूप से न चल पाना तथा मध्यावधि चुनाव के पश्चात् विरोधी दलों का सरकार न बना पाना है। जनसंघ की प्रगति की सम्भावना आगे नहीं बढ़ी। यदि कुछ परिवर्तन हुआ है, तो केवल विधानसभाओं के भीतर कांग्रेस इतर दलों के परस्पर संख्या सन्तुलन में ही हुआ। चित्र का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि विरोधी दलों में भी प्रायः ऐसे दलों की सदस्य संख्या बढ़ी है, जिनका कार्यक्षेत्र प्रदेश के किसी विशेष इलाके अथवा प्रदेश तक सीमित है। अतः यह धारणा कि कांग्रेस अपनी क्षीण शक्ति को पुनः प्राप्त कर रही है अथवा यह कि जनसंघ अब उन क्षेत्रों में भी कांग्रेस का पर्याय नहीं बन सकता जहां वह अब तक उस रूप में बढ़ता दीख रहा था, पूर्णतः अशुद्ध होगा।

दल	पंजाब कुल सीट १०४		उत्तरप्रदेश कुल सीट ४२५		बिहार कुल सीट ३१८		पश्चिम बंगाल कुल सीट २८०	
	१९६७	१९६९	१९६७	१९६९	१९६७	१९६९	१९६७	१९६९
कांग्रेस	४७	३८	१९९	२११	१२८	११८	१२७	५५
जनसंघ	९	८	९८	४९	२६	३४	१	—
संसपा	१	२	४४	३३	६८	५२	७	९
कम्युनिस्ट पार्टी	५	३	१३	४	२४	२५	१६	३०
मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी	३	२	१	१	४	३	४३	८०
प्रसपा	—	१	११	३	१८	१७	७	५
स्वतन्त्र	—	१	१२	५	३		१	—
अकाली	२६	४३	—	—	—	—	—	—
भाक्रांद	—	—	—	९९	—	६	—	—
बंगला कांग्रेस	—	—	—	—	—	—	३४	३३
फारवर्ड ब्लाक	—	—	—	—	—		१३	२१
रिपब्लिकन	३	०	१०	१	१	०	—	—
निर्दलीय	१०	५	३७	१९	४६	५७	३१	४७

और शक्ति का तात्कालिक आंकलन भी प्रायः इसी पृष्ठभूमि में किया जा रहा है।

यदि मध्यावधि चुनाव के स्थूल और मनोवैज्ञानिक परिणामों पर तनिक गहराई से दृष्टिपात करें, तो स्पष्ट हो जायगा कि कांग्रेस १९६७ की स्थिति से तनिक भी आगे नहीं बढ़ी।

उपरोक्त आंकड़े साक्षी हैं कि कांग्रेस की शक्ति बढ़ी नहीं। उसकी गिरने की गति कम नहीं हुई। मनोवैज्ञानिक रूप से भी कांग्रेस का मनोबल और आत्मविश्वास क्षीण हुआ है।

१९६७ से पूर्व कांग्रेस किसी दल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ संयुक्त सरकार बनाने में अपनी हेटी समझती थी। परन्तु हाथों से शक्ति निकलती देखकर उसने पहले अल्पसंख्यक सरकारों के निर्माण का खेल खेला और अब मध्यावधि चुनावों के पश्चात् अन्य दलों के साथ संयुक्त सरकार बनाने के लिए भी तैयार है। बिहार के कांग्रेसी नेता सरकार बनाने के लिए जनसंघ का सहयोग लेने के इच्छुक थे। यह अलग बात है कि जनसंघ ने उसे स्वीकार नहीं किया।

मध्यावधि चुनाव के तुरन्त पश्चात् जनसंघ अध्यक्ष श्री वाजपेयी ने जब यह कहा कि यदि कांग्रेस और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता सरकार बनाने में असमर्थ रहें और जनसंघ का सहयोग मांगे, तो उस पर विचार किया जायगा। यह केवल राजनीतिक वक्तव्य था, किन्तु बिहार के कांग्रेस के नेताओं ने समझा कि जनसंघ सरकार बनाने को तैयार है। उन्होंने अपनी सुप्त इच्छाएं खोल दीं। कांग्रेस हाईकमान को भी बिहार में छोटे दलों के साथ मिल कर सरकार बनाने की अनुमति देनी पड़ी। इसी प्रकार मध्यप्रदेश में सत्ता में आने के लिए हरियाणा काण्ड के समय स्वीकृत सिद्धान्त के विरुद्ध दल बदलने वालों को सरकार में सम्मिलित करने की अनुमति दी। यह इस बात का परिचायक है कि कांग्रेस के नेता भली प्रकार अनुभव करने लगे हैं कि कांग्रेस का ह्रास थम नहीं सकता और दूसरे यह कि गद्दी के बिना कांग्रेस का जीवन और दूभर हो जायगा। कांग्रेस के मनोबल का यह ह्रास ऐसा कैंसर है, जो ठीक नहीं किया जा सकता।

इसके विपरीत जनसंघ के नेता और कार्यकर्ता लम्बा और गहरा खेल खेलने को तैयार हैं। गत आम चुनाव के पश्चात् निश्चय किया गया था कि संयुक्त सरकारों में सम्मिलित हुआ जाय। केवल हरियाणा में बाहर रह कर सरकार को समर्थन देने का निश्चय किया गया था। सरकार में सम्मिलित होने का निश्चय यह समझ कर किया गया था कि यह सरकारें स्थायी रूप से नहीं चल सकेंगी। उनमें तनाव रहेंगे। उसकी स्पष्ट कल्पना भारतीय प्रतिनिधि सभा के अप्रैल, १९६७ के तथा बड़ौदा की भारतीय कार्यसमिति के प्रस्ताव में स्पष्ट की थी।

कुछ लोगों का मत है कि यदि जनसंघ सरकारों में सम्मिलित न होता, तो अच्छा होता। यह बड़ा मोटा निष्कर्ष है। यदि उस समय जनसंघ आगे न आता और विरोधी दलों की सरकारें न बनतीं, तो कौन दावा कर सकता है कि अमुक प्रकार की ही स्थिति पैदा होती। कल्पना करें कि यदि राजस्थान में राज्यपाल अनुचित हस्तक्षेप करके कांग्रेस की सरकार न बनवाते तथा कांग्रेस के स्थान पर विरोधी दलों की सरकार बनी होती, तो क्या होता? क्या कांग्रेस पुनः सरकार बना पाती और वह स्थायी हो जाती। सामान्यतः लगता है कि ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार यदि उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में कांग्रेस की सरकार रहने दी जाती और बिहार में भी कांग्रेस को किसी प्रकार सरकार बनाने का अवसर दिया जाता, तो क्या राजस्थान की भांति कांग्रेस शासन मजबूत न हो जाता। गत आम चुनावों के पश्चात् संविद सरकारों के गठन का प्रमुख परिणाम यह हुआ है कि कांग्रेस अन्य दलों के समकक्ष आकर खड़ी हो गयी है। देश की राजनीति के परिवर्तन की यह एक आवश्यक प्रक्रिया है, जिसका शीघ्र पूर्ण होना स्थिरिकरण के लिए आवश्यक है।

कांग्रेस की टूट-फूट का एक स्वाभाविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय दलों का उदय है। कांग्रेस से बाहर आये लोगों का अपने राजनीतिक अस्तित्व के लिए दल का गठन करना अत्यन्त स्वाभाविक है। यह पहले भी हुआ है। इन दलों का देश के राजनीतिक मंच पर स्थायी अथवा दीर्घ-कालिक निर्णायक प्रभाव डालना सम्भव नहीं। कुछ वर्षों तक ये दल शक्ति का आभास पैदा कर सकते हैं, इससे अधिक नहीं। प्रसपा इसका बड़ा उदाहरण है।

बड़े राजनीतिक दलों की विशेषत: जनसंघ की चुनावों में विजय की गति में ऐसे दलों ने बाधा उत्पन्न की है। परन्तु इसका कोई तात्कालिक इलाज नहीं। सिद्धान्तों से समझौता किये बिना उनसे मेल करके चलना नीति का एक उपादेय अंग हो सकता है। परन्तु सार्वदेशिक स्तर पर राजनीतिक मान-चित्र में हेर-फेर करने की इनमें क्षमता नहीं। इनकी शक्ति को स्थायी बाधा समझना भी जनसंघ के लिए अनुचित होगा। क्षेत्रीय दलों का एक दूसरा पहलू भी है। कई बार ऐसे दलों के हाथों में प्रदेश में सन्तुलन बिगाड़ने की शक्ति आ जाती है। वह तराजू में रखे गये उस पासंग की भांति बन जाते हैं जिसे जिधर रख दो उधर ही पलड़ा भारी हो जाय। यह स्थिति पूर्णत: अस्थायी है। इनके ह्रास के कीटाणु स्वयं उनके भीतर विद्यमान होते हैं। व्यक्तियों अथवा गुटों के हित साधन के लिए हेरा-फेरी उनके राजनीतिक प्रभाव तथा सम्मान को अधिक समय नहीं बने रहने दे सकता। दूसरे, ऐसे दल सत्ता से बाहर अधिक समय जीवित नहीं रह पाते। न तो इन दलों का आदर्शपूर्ण संगठन बनना सम्भव है और न उनके थके-मांदे नेतृत्व में लम्बी लड़ाई लड़ने का दम शेष है। उनकी पुरानी कमाई के अवशेष अथवा क्षेत्रीय और जातीय मात्र उनकी शक्ति का स्रोत है।

मध्यावधि चुनावों के मोटे रूप से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:—

१—कांग्रेस तेजी से टूट रही है। उसका ह्रास अवश्यम्भावी है।

२—जब तक कोई एक दल पूरी शक्ति प्राप्त नहीं करता उस समय तक संयुक्त सरकारों की अनिवार्यता को स्वीकार करना होगा।

३—कांग्रेस के विघटन की प्रक्रिया में छोटे दलों का निर्माण होगा। बड़े दलों को उनके अस्तित्व को देखकर चलना होगा।

४—कांग्रेस तथा कांग्रेस से निकले सत्ता से अपदस्थ तत्व सत्ता प्राप्ति के लिए संकुचित और क्षेत्रीय भावनाओं का सहारा ले सकते हैं।

५ - राजनीति में चुनाव के समय मुख्यत: और कभी वैसे ही हिंसात्मक प्रवृत्तियां प्रकट होंगी।

उपलब्ध परिस्थितियों में जनसंघ के ऊपर प्रमुख दायित्व है कि वह शक्ति संपादन कर आने वाले वर्षों में देश के बहुतांश तथा तदोपरांत सम्पूर्ण देश में कांग्रेस का विकल्प बने। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए जनसंघ के पास शक्ति का पर्याप्त गहन और विस्तृत धरातल है। व्यावहारिक और आदर्शपूर्ण कार्यक्रम तथा उसका नया राजनीतिक नेतृत्व ही आधार रहा है।

आम चुनाव के पश्चात् पं० दीनदयाल उपाध्याय की आकस्मिक हत्या के कारण जनसंघ को भारी धक्का लगा है। परन्तु जनसंघ का कार्यकर्ता तथा आदर्श आधारित-कार्यकर्ता ढांचा बड़े से बड़ा धक्का सहन करने और उसका सामूहिक नेतृत्व दल को आगे ले जाने में समर्थ है। ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नये अध्यक्ष

भारतीय जनसंघ की जवानी और उसका उत्साह एवं प्रभाव आज दल के नये अध्यक्ष उन श्री अटलविहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व में झलकता है, जिन्हें पं० दीनदयाल उपाध्याय की दुःखद एवं रहस्यमयी मृत्यु के वाद सर्वसम्मति से दल का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया है। श्री वाजपेयी का जन्म १९२६ में ग्वालियर में हुआ और उन्होंने विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर तथा डी० ए० वी० काजेज, कानपुर से शिक्षा प्राप्त कर एम० ए० (राजनीति) की उपाधि धारण की। अपने छात्र-जीवन में अटलजी छात्र नेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। वह १९४३ में विक्टोरिया कालेज छात्र संघ के सचिव एवं १९४४ में उपाध्यक्ष चुने गये। उसी साल वह ग्वालियर स्टूडेंट फैडरेशन के अध्यक्ष तथा आर्य कुमार सभा के सचिव भी बने।

श्री वाजपेयी भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में हैं। १९५३ में वह जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के सचिव नियुक्त हुए। उनके प्रभावी कार्य को देखकर १९५६ में उन्हें जनसंघ का सचिव बना दिया गया। वह १९५७ से १९६२ तक लोकसभा के सदस्य रहे तथा अप्रैल, १९६२ में उन्हें राज्यसभा के लिए चुन लिया गया। १९६७ में अटलजी को पुनः लोकसभा का सदस्य चुना गया। तब से वह जनसंघ संसदीय दल के नेता हैं। १९६८ में श्री दीनदयाल उपाध्याय की असामयिक मृत्यु के बाद उन्हें जनसंघ का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

सिद्धान्त एवं आदर्शवादी राजनेता होने के नाते श्री अटलविहारी वाजपेयी सार्वजनिक मामलों पर अपना मत व्यक्त करने में कभी नहीं चूकते, जिसके कारण उन्हें अनेक कठिनाइयां सहन करनी पड़ी हैं। वन कानून भंग करने में उन्हें १९४२ में जेल जाना पड़ा और १९५८ में उत्तरप्रदेश खाद्य आन्दोलन तथा नयी दिल्ली में १९६७ में कच्छ समझौता विरोधी आन्दोलन में भी कारादण्ड भुगतना पड़ा।

विदेश यात्रा

जनसंघ के नेताओं में सम्भवतः श्री वाजपेयी ने सबसे अधिक विदेश यात्रा की है। १९६२ में अमरीकी सरकार ने उन्हें राष्ट्रपति निर्वाचन देखने के लिए अमेरिका बुलाया। १९६५ में भारत सरकार की ओर से कश्मीर पर भारत के रुख का स्पष्टीकरण करने भेजे गये प्रतिनिधि मण्डल में श्री वाजपेयी अफ्रीकी देशों में गये। वह उस भारतीय प्रतिनिधि मण्डल में भी शामिल थे, जो १९६६ में कनाडा में हुए राष्ट्रमण्डलीय संसदीय सम्मेलन में भाग लेने गया था। इस्रायल सरकार के निमन्त्रण पर वह सितम्बर, १९६७ में इस्रायल गये। उसी महीने भारतीय संसदीय प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य होकर वह आस्ट्रेलिया गये। उन्होंने ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और पूर्वी एशियाई देशों की भी यात्रा की।

साहित्यिक प्रतिभा

श्री वाजपेयी ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा से भी राजनीति को प्रभावित किया। वह कुशल वक्ता एवं कवि के साथ-साथ एक प्रसिद्ध पत्रकार भी रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रधर्म (मासिक), पांचजन्य (साप्ताहिक), स्वदेश (दैनिक) लखनऊ तथा वीर अर्जुन, दिल्ली का सम्पादन किया। 'अमर बलिदान', 'मृत्यु या हत्या' और 'जनसंघ और मुसलमान' नामक पुस्तकें उनकी लेखनी का प्रभाव कह रही हैं।

श्री अटलविहारी वाजपेयी १९४१ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बने और तभी से वह इस संस्था के निष्ठावान् कार्यकर्ता हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

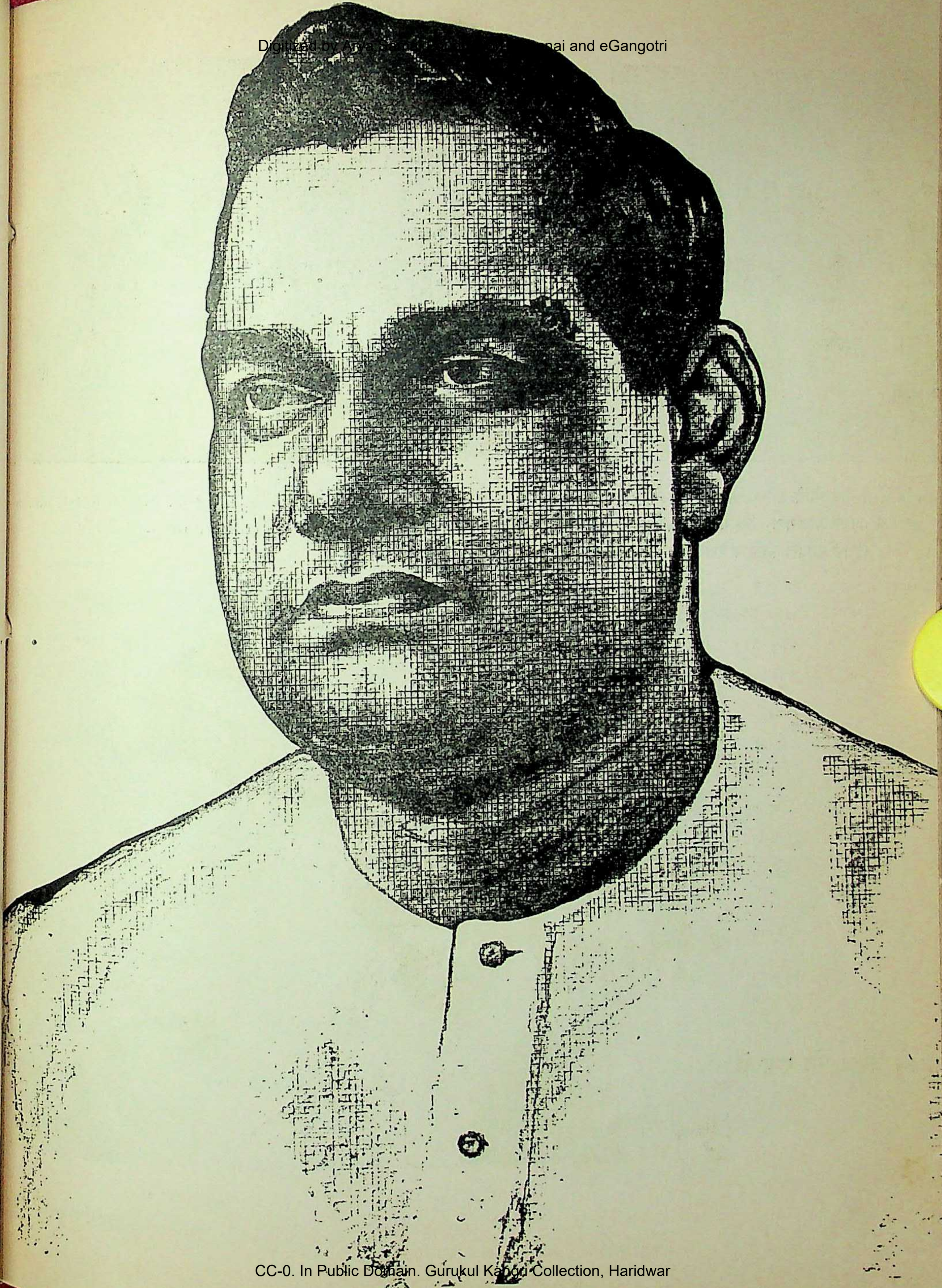

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनसंघ संसद-सदस्यों के प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व करते हुए। यह प्रतिनिधि-मण्डल नक्सलवाड़ी गया, जिसमें श्री अटलबिहारी वाजपेयी के अतिरिक्त सर्वश्री यज्ञदत्त शर्मा व वेणीशंकर शर्मा भी शामिल हैं।

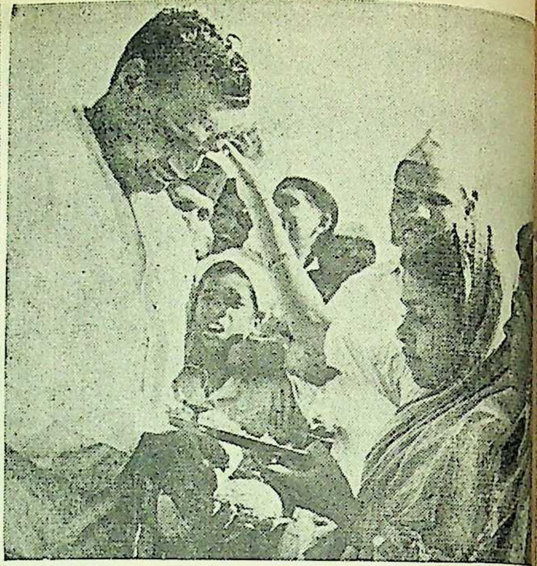

औरंगाबाद अधिवेशन के लिए जाते समय लोकप्रिय नेता का भा
परम्परानुसार अभिनन्दन ।

हान वक्ता के रूप में

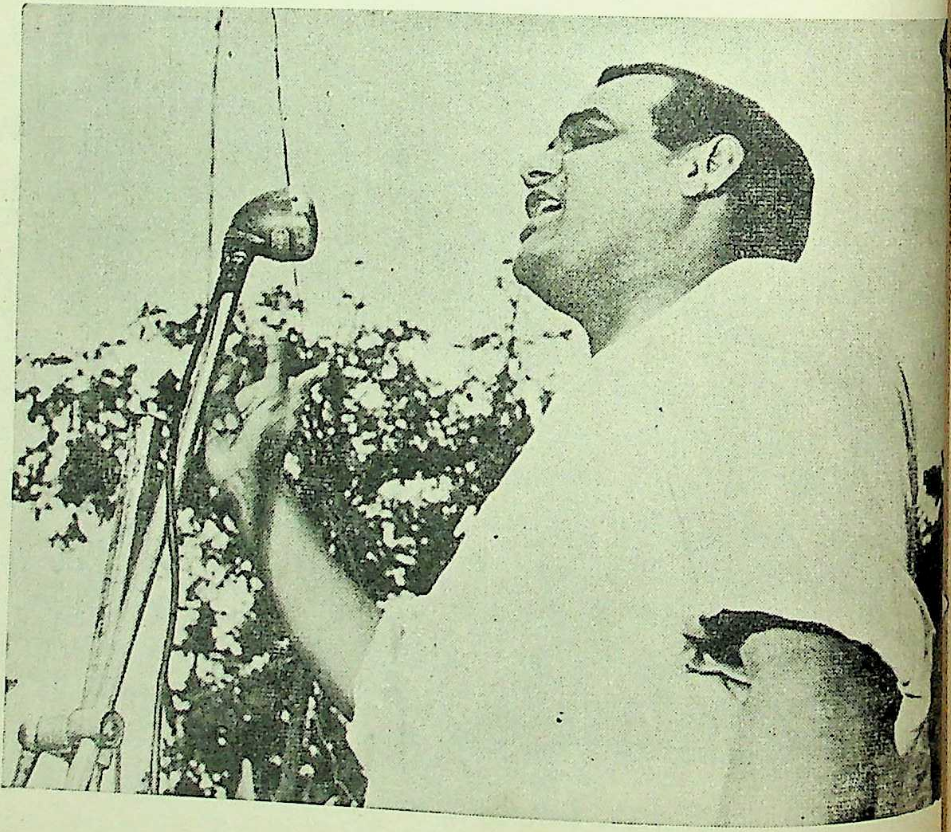

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

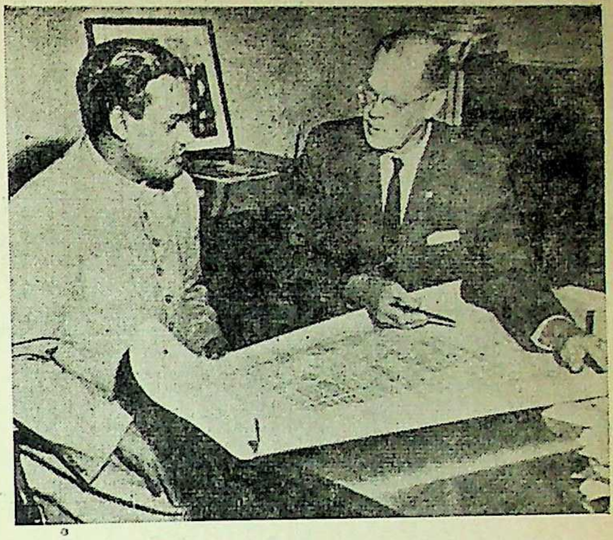

निटिल राक (अमरीका) के महापौर के साथ ।

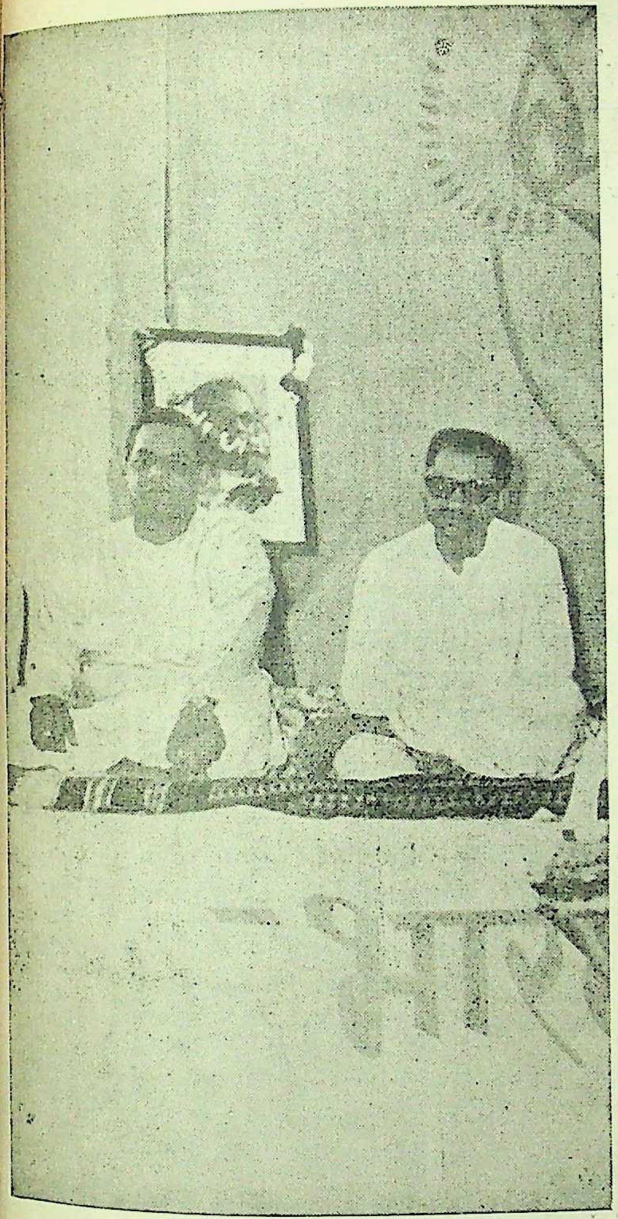

स्वर्गीय पं० दीनदयाल उपाध्याय के साथ ।

प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी पूंजी और भिखमंगों की योजना

● डा० भाई महावीर
संसद सदस्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रथम बार हमारे सामने ऐसी स्थिति आयी कि जिसने समस्त विचारशील व्यक्तियों को एक साथ बैठने और यह विचार करने को विवश कर दिया कि वे देश के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी (विशेषकर विदेशी सहायता) के योग के विषय में मनन करें। आजादी के समय ब्रिटेन ने हमारे पास १७ अरब ३५ करोड़ पौंड पावना छोड़ा था, जिसके कारण विश्व के प्रगतिशील देश हमारी प्रगति में दिलचस्पी ले रहे दिखायी देते थे। इससे हमने जीवन की यथार्थ कठोरता को भुला दिया। इस आरामपसन्द जिन्दगी में हम यह भी भूल गये कि जो ऋण हम ले रहे हैं वह ब्याज सहित लौटाना पड़ेगा।

हमने अनुदानों को पिता ईसा मसीह का उपहार मात्र समझा और यह भूल गये कि पिता ईसा मसीह के तथाकथित उपहार बच्चों के लिए होते हैं, राष्ट्रों के लिए नहीं। आज जिस आघात से हम अपने "कल्पना-लोक" में यकायक चौंक उठे हैं, उसकी गम्भीरता को अनुभव करना तथा उस पर विचार करना अनुचित न होगा। दूसरे राष्ट्रों की सहायता पर हमारी निर्भरता ने चौथी योजना (मसविदा रूपरेखा प्रकाशित हो गयी है) को पतन के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। तीन वर्ष के लिए आयोजन का स्थगन सर्वविदित तथ्य है। इस वर्ष स्थिति यह है कि हम एक पूंजी निर्यातक के रूप में ही हैं, क्योंकि हमें अपने ऋणों में से ५८.८ करोड़ पौण्ड की अदायगी करनी है। विदेशी सहायता ५० करोड़ पौण्ड की प्राप्त होनी है, अतः ८.८ करोड़ पौण्ड की आवश्यकता और ऋण भुगतान के लिए ही रह जाती है।

('योजना' अग्रलेख २६ अक्तूबर, ६८)

यदि हम विदेशी सहायता पर और भी गम्भीरता से विचार करें, तो पी० एल० ४८० के अनुभव और भी आंखें खोलने वाले हैं। गोखले इंस्टीट्यूट आफ इकनामिक्स व पालिटिक्स के प्रोफेसर यू० एम० डांडेकर के शब्दों में "हमारी खाद्य नीति को भी गम्भीर आघात पहुंचा है। इसकी वह आधारशिला (मूल सिद्धान्त) हिल गयी जिसके भरोसे हम यह सहायता ले रहे थे और यह स्पष्ट हो गया कि हम इस पर ज्यादा भरोसा नहीं कर सकते। जिन परिस्थितियों में यह सत्य सामने आया और उस पर सरकार की जो प्रतिक्रिया देखने को मिली, उससे यह पूर्णतः स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय सम्मान को ठेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाकर भी देश इस खाद्य सहायता पर निर्भर रहने को विवश हो गया है।"

(पी० एल० ४८० के अधीन प्राप्त सहायता का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव—रथ व पटवर्धन)

स्पष्ट है कि अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि हम अपने आर्थिक विकास बनाम विदेशी पूंजी के समस्त पहलुओं पर नये सिरे से विचार करें। क्या विदेशी पूंजी हमारे लिए लाभदायक उपहार या वरदान है, जिसे हमें प्राप्त करना चाहिए अथवा वह एक बुराई और खतरा है, जिससे हमें बचने व अपनी रक्षा के लिए सतर्क रहना चाहिए? यह वरदान भी है और खतरा भी, विदेशी पूंजी वरदान इस अवस्था में है, जब वह किसी अर्थव्यवस्था के मूल विकास में सहायक हो, नये-नये अवसर प्रदान करे, नये-नये उत्पादन शुरू हो तथा नये साधनों की प्राप्ति हो। विदेशी पूंजी खतरा उस अवस्था में है, जब वह देश के उद्योगों के ह्रास और अवनति का कारक बने, बेरोजगारी बढ़ाये तथा उत्पादन में भारी गिरावट की जानकारी हो। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विदेशी नियोजक का लक्ष्य लाभ होता है, पिछड़ों का जीवन-स्तर उठाना उसका लक्ष्य नहीं। वह पूर्णतः परोपकारी भावना से अपनी पूंजी का विनियोजन नहीं करता, अपितु अपने धन से लाभ कमाने की भावना उसमें रहती है।

भारत में रेलवे के निर्माण को प्रायः ब्रिटिश पूंजी से प्राप्त वरदान के रूप में उल्लिखत किया जाता है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि भारत में रेलवे जाल बिछाने में तब तक वांछित सहायता न मिली, जब तक कि लार्ड डलहौजी ने भविष्य में लाभ की गारंटी की योजना शुरू न की और पूंजी लगाने में आने वाले खतरों को कम न किया। उन्होंने पांच प्रतिशत व्याज की गारंटी व मुफ्त भूमि दी। पांच प्रतिशत व्याज की अदायगी के बाद बचे लाभ में भी प्राइवेट कम्पनियों को हिस्से का आश्वासन दिया गया। एक लम्बी अवधि तक सरकार को अपने बजट में विदेशी पूंजी पर गारंटी के अनुसार पांच प्रतिशत व्याज की व्यवस्था करनी पड़ी। दूसरे शब्दों में प्राइवेट ब्रिटिश कम्पनियां भारतीय करदाता की बचत पर फली-फूली। यह भारतीय करदाता ही था, जिसे इस प्रगति के लिए त्याग करना पड़ा और इसका बोझ सहना पड़ा।

भारत में रेलवे निर्माण के लिए ब्रिटिश पूंजी कोई वरदान न थी। रेलवे निर्माण की योजनाओं को सरकार ने न केवल ब्रिटेन से ऋण लेकर सहायता दी, अपितु भारतीय करदाता से भी करों के रूप में धन उगाहा और लगाया। ब्रिटिश ऋण से देश को लाभ न पहुंचा, क्योंकि उसकी वापसी उपभोक्ता सामग्री में न हुई। इतना ही नही प्राइवेट ब्रिटिश कम्पनियों तथा ब्रिटिश सरकार ने रेलवे का निर्माण देश की अर्थव्यवस्था के सुधार के उद्देश्य से नहीं किया था, अपितु उसका उद्देश्य लाभार्जन तथा भारत में ब्रिटिश व्यापार का व्यावसायिक हितों का संरक्षण था। जैन्क्स के शब्दों में यह कहने में कोई दुःख या आश्चर्य नहीं कि जिन अंग्रेजों ने भारत में पूंजी विनियोजन किया, वह लाभ के लिए किया और उससे भी ज्यादा लाभ के लिए जितना कि वह उन्हीं स्थितियों में अपने देश में कमा सकते थे। यह बिल्कुल सत्य है कि इस नियोजन में उनका उद्देश्य भारत का विकास या तरक्की बिल्कुल नहीं था।

यदि ब्रिटिश पूंजी या ब्रिटिश राजनीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भारत में हस्तक्षेप न होता, तो हमारी क्या स्थिति होती, यह अध्ययन यद्यपि शिक्षा का विषय है, परन्तु बड़ा महत्वपूर्ण है। यह सर्वविदित है कि अति प्राचीन काल से लेकर १८वीं सदी तक भारत एक बड़ा उत्पादक तथा कृषि उन्नत राष्ट्र था। भारत में बने वस्त्र, कालीन, आभूषण, रत्न-हीरे, बर्तन, नक्काशी व पच्चीकारी की वस्तुएं रोम तथा विश्व के अन्य प्रमुख नगरों के सरकारी तथा निजी भवनों की शोभा बढ़ाती थीं। यदि भारत इस प्रभाव से मुक्त रहता तो, निःसंदेह वह स्वाभाविक रूप से पूर्ण औद्योगिक विकास के पथ पर बढ़ा होता। ब्रिटिश पूर्वी के आगमन से पूर्व देश की जो औद्योगिक व व्यावसायिक स्थिति थी, उसमें उपरोक्त विकास की संभावनाएं मौजूद थीं। इसके बावजूद यह कहने में कोई लाभ नहीं कि ब्रिटिश पूंजी के कारण भारत का जिस गति से विकास हुआ, उतना देशी साधनों व पूंजी से सम्भव नहीं था। ब्रिटिश पूंजी से नियोजन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। "रेलों ने हजारों की जीविका का साधन छीना, सूती मिलों ने लाखों बुनकरों व कातने वालों की रोजी छीन ली। जूट मिलों ने बंगाल के ग्रामों में फालतू समय के सदुपयोग के लिए घर-घर में चलने वाले लघु उद्योग व दस्तकारी को समाप्त कर दिया।" **(टायांजिकिन)**

हमारे देश के मामले में दुःखद स्थिति यह रही कि पूंजी ने विकास को सहायता न दी और जहां आवश्यक था वहां पुराने यंत्रों व पुर्जों तथा दस्तकारियों का उचित ढंग से नवीकरण नहीं हुआ। हुआ यह कि एक ओर तो नयी पूंजी संग्रहीत हुई तथा नये उद्योग स्थापित हुए, दूसरी ओर मौजूदा पूंजी का उपयोग नहीं हुआ तथा उससे व्यवसाय समाप्त होते चले गये। विदेशी पूंजी की अपने स्वभाव व लक्ष्य के कारण इस दिशा में क्रूर भूमिका रही, नये उद्योगों की स्थापना के लिए उसी का धड़ल्ले से प्रयोग हुआ और देश की बचत (विदेशी मुद्रा से लगभग तीन गुना) का उनमें विनियोजन करने में उपेक्षा करती गयी, नये उद्योगों में अपनी पूंजी लगाने में भारतीयों में झिझक रही, परिणाम यह हुआ कि भारतीय धन का उपयोग उत्पादन को बढ़ाने में न होकर, साहूकारे में तथा भूमि, चांदी-सोना खरीदने तथा आभूषण बनवाने में होता रहा। अतः स्पष्ट है कि उस समय देश को ज्यादा पूंजी की आवश्यकता न थी, अपितु देश में उपलब्ध पूंजी को उत्पादन बढ़ाने में लगाने के लिए सही निदेशन व परामर्श की आवश्यकता थी। समझदार नियोजकों के अभाव में यह परामर्श व निर्देशन सरकार से ही मिल सकता था, परन्तु देश में तब जो सरकार थी वह दूसरे लोगों की थी। उनकी दिलचस्पी पूंजी थी। ब्रिटिश सरकार ने देश के उद्योगों को विनष्ट करने के लिए उत्पादन कर लगाया जबकि उन्हें पहले ही विदेशी माल से कड़ी प्रतियोगिता करनी पड़ रही थी। श्री एम० विश्वेश्वरैया के शब्दों में "सूती उत्पादन का कर मुक्त आयात ही न होता था, वरन् सरकार ने स्थानीय मिलों के उत्पादन पर उत्पादन कर लगा रखे थे। विश्व के किसी भी देश में निजी उद्योगों के लिए घातक इस प्रकार के कदम को सहन नहीं किया जा सकता।" **(रिकंस्ट्रक्टिंग इण्डिया)**

उपरोक्त स्थिति का परिणाम यह हुआ कि देश के उद्योगों की कमाई कम होती गयी और देश के व्यापारिक व व्यावसायिक वर्ग की बचत-क्षमता भी घटती गयी। पूंजी संग्रह की प्रक्रिया मिटती गयी और देशी उद्योग विनाश की ओर बढ़ते गये। इसका

(शेष पृष्ठ १३२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान भारत ही हमारा लक्ष्य

● के० र० मलकानी

देश के समक्ष एक बड़ी समस्या है सर्वसम्मत लक्ष्यों और राष्ट्रीय एकता का न होना। कुछ लोग उसे अमेरिका की तरह पूंजीवादी देश बना देखना चाहते हैं, तो कुछ की आकांक्षा उसे रूस की तरह साम्यवादी देश बना कर देखने की है। कुछ लोग चाहते हैं कि तत्काल हिंदी लागू हो, तो कुछ 'सदा के लिए अंग्रेजी' के हिमायती हैं। कुछ का सपना उसे एक हिंदू राष्ट्रीय राज्य बनाने का है, तो कुछ गैर-हिंदू—लगभग हिन्दू विरोधी - धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाना चाहते हैं। लक्ष्यों की इस विविधता ने निश्चय ही कटु विवादों को उकसाया है। मुझे कोई सन्देह नहीं है कि इस स्थिति में भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना संभव है। यदि १९४७ से पहले एक शब्द 'स्वराज्य' में राष्ट्रीय एकता की अभिव्यक्ति संभव हो सकी, तो स्वाधीन भारत में उसे केवल दो शब्दों—महान् भारत में अभिव्यक्त किया जा सकता है। 'महान् भारत' से मेरा तात्पर्य है महान् शक्तिसंपन्न भारत और ऐसा भारत, अच्छे अर्थों में, इण्डियन या भारतीय या हिंदू—हम अपनी इच्छानुसार उसे कुछ भी कह सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है, राज्य के रूप में प्रतिष्ठित होगा ।

यह लक्ष्य किसी भी देश के लिए वांछनीय हो सकता है, किन्तु कुछ ही इसे प्राप्त कर सकते हैं । जिस देश का इतना अधिक सीमा विस्तार हो, जो प्राकृतिक साधनों से सम्पन हो, जहां इतने अधिक योग्य लोग रहते हैं और जो उद्योगों से भरपूर हो, वह एक महान् देश बन सकता है—महान् बना रह सकता है । इंगलैंड और फ्रांस अपने छोटे आकार के कारण केवल एक या दो शताब्दियों तक महान् तब तक बने रहे, जब तक बड़े देशों ने उन्हें नहीं पछाड़ा । इस दृष्टि से रूस और अमेरिका इन दोनों देशों से अधिक समय तक महान् बने रह सकते हैं और इसी दृष्टि से भारत और चीन भी महान् शक्तियों का दर्जा प्राप्त कर सकते हैं ।

महान् संस्कृति आवश्यक

किसी महान् शक्ति के पास उसकी महान् संस्कृति भी होनी चाहिए ताकि वह विश्व-संस्कृति को योगदान कर सके, महान् बनने के लिए किसी भी देश के पास श्रेष्ठ विचार होने की नितांत आवश्यकता है । एक बड़ा कबीला, भले ही वह शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो, महान् राज्य का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि उसकी संस्कृति नहीं होती है, जो उसे आदर और सम्मान दिलाये । यहां फिर भारत की महान् अमर संस्कृति उसे महान् राष्ट्र का दर्जा दिलाने के लिए दृढ़ आधारशिला प्रदान करती है ।

इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है कि देश के अधिकांश लोग इस राष्ट्रीय लक्ष्य पर सहमत हो सकते हैं । यदि कुछ लोग विरोध भी करते हैं, तो हमें उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए । आखिरकार क्रान्तियों का सृजन कभा भी एकमत से नहीं होता है । वर्तमान दृगभ्रमित और कुंठाग्रस्त भारत, जो सुदृढ़ और विश्वस्त भारत के रूप में परिवर्तित हो रहा है, भी एक महान् क्रान्ति के कगार पर खड़ा है । लोग यह भूल जाते हैं कि सभी अमेरिकी लोग अमेरिका को स्वाधीन होना नहीं चाहते थे । उनमें से अनेक ने अमेरिकी क्रांति को दबाने के लिए ब्रिटेन का साथ दिया । उनमें से अनेक स्वाधीन अमेरिका में घुलमिल नहीं सके और कनाडा चले गये । सभी क्रान्तियां कुछ ऐसे मुट्ठी भर समर्पित लोगों से प्रभावित होती हैं, जो क्रान्तिकारी उद्देश्यों की सिद्धि के लिए जनमानस की सहानुभूति अर्जित करने में सक्षम होते हैं ।

कोई भी देश आसानी से महान् नहीं बन जाता है । प्रत्येक बड़ा देश अनेक विघ्न तथा बाधाओं को पार करके ही महान् बन पाता है । भारत भी इसका अपवाद नहीं है । हमें लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में अनेक बाधा तथा आन्तरिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है । स्काटलैंड को, जो हर बार फ्रांस से संघर्ष के छिड़ने पर इंगलैंड को परेशान करता था, जीते बिना इंगलैंड कभी भी महान् नहीं बन सकता था । इंगलैंड ने धन और शक्ति दोनों के बल पर स्काटलैंड को अपने अधीन किया ।

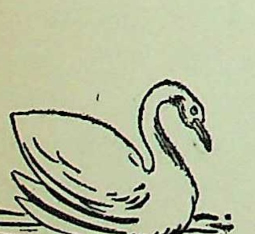

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका कभी भी महान् नहीं बन पाता यदि उसने केन्द्र और दक्षिणी राज्यों के बीच लगातार चल रहे झगड़े के स्थान पर रक्तरंजित गृहयुद्ध का रास्ता न चुना होता। आज की स्थिति में पहुंचने के लिए चीन को जापान, अमेरिका और अपने निजी युद्धप्रिय सामंतों से संघर्ष करना पड़ा। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे अब भी अपने साथी रूस से जूझना पड़ रहा है।

नारों से काम नहीं चलेगा

अपने आकार और साधनों, जनसंख्या तथा संस्कृति के कारण भारत स्वभावतः महान् शक्ति का दर्जा प्राप्त करने की स्थिति में है। झूठे नारों से जनता को मूर्ख बना कर हमारे सत्तारूढ़ नेतृत्व ने लोगों को केवल कुंठाग्रस्त बना दिया और भारतीय क्रान्ति को दिशाहीन कर दिया। हमें इस क्रान्ति को सही रास्ते पर लाकर उसे घोषित लक्ष्य की ओर ले जाना है। रास्ते में आने वाला कोई भी व्यवधान हमें हटाना होगा। फिर वह चाहे साम्यवाद हो या सम्प्रदायवाद अथवा विदेशी धर्म-प्रचारक। राष्ट्रीय आकांक्षा अनर्गल बातों को सहन नहीं कर सकती है। यहां ऐसे लोग हैं, जो 'लोकतन्त्र' तथा 'धर्मनिरपेक्षवाद' के नाम पर देश का अहित कर रहे हैं। उन लोगों को प्रकाश में लाना होगा, उन्हें समाज से पृथक करके उनकी गतिविधियों को समाप्त करना होगा। ऐसे लोगों के लिए भारत में कोई स्थान नहीं है, जो रहते तो यहां हैं, किन्तु जिनकी सहानुभूति चीन और पाकिस्तान जैसे हमारे शत्रु देशों से है। 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' का नारा लगाने वाले, माओ के चित्रों की पूजा करने वाले या हमारे धर्म पर कीचड़ उछालने वाले भारतीयों से कह देना चाहिए कि या तो वे अपना मुंह बन्द रखें या देश छोड़ कर चले जायं।

विदेशी चुनौतियां भी देश के भीतर तोड़-फोड़ करने वाले से कम गंभीर नहीं हैं। यह स्वाभाविक और अनिवार्य है। महान् देशों की पंक्ति में सीमित स्थान है। जो देश उसमें पहले से ही विद्यमान हैं, वे न तो विस्थापित होना चाहते हैं और न ही विश्व शक्ति में किसी और को साझेदार बनाने को तैयार हैं। इस बारे में उनकी स्थिति तृतीय श्रेणी में यात्रा करने वाले यात्रियों जैसी है, जो नये लोगों को अपने डिब्बे में नहीं चढ़ने देना चाहते हैं। विश्व शक्ति क्लब में प्रवेश के लिए यह प्रतिरोध सदैव बना रहा और बना रहेगा।

आधुनिक इतिहास में पोप ने विश्व को दो भागों में विभाजित कर दिया। उसने पूर्व तो पुर्तगाल को सौंप दिया और पश्चिम स्पेन को। यही कारण था कि पुर्तगाली भारत आये और स्पेनी अमेरिका पहुंचे। आज भी उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका का एक बड़ा जनसमुदाय स्पेनी भाषा बोलता है, अंग्रेजी नहीं। तब हालैंड, फ्रांस और इंगलैंड आगे बढ़े, तो उन्हें स्पेन और पुर्तगाल से और आपस में एक दूसरे से उस समय तक संघर्ष करना पड़ा जब तक इंगलैंड और फ्रांस सही अर्थों में महान् शक्तियां नहीं बन गये। जब जर्मनों ने भी उनका दर्जा प्राप्त करना चाहा, तो फ्रांस ने डट कर उसका प्रतिरोध किया। पहले उसने दो मोर्चों पर लड़ाई के भय से जर्मनी का प्रतिरोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए रूस को शस्त्रास्त्र दिये और उसे औद्योगिक देश बनाया । परन्तु जब उससे जर्मनी को नहीं दबाया जा सका, तो प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा ।

सौ साल से भी अधिक पहले जब अमेरिका में गृहयुद्ध छिड़ा, तो इंगलैंड और फ्रांस को अत्यधिक प्रसन्नता हुई । सम्राट लुई बोनापार्ट ने अमेरिका के विभाजन की आशा करते हुए अपनी प्रसन्नता को खुले आम अभिव्यक्त किया । इंगलैंड दक्षिणी साम्राज्य को मान्यता देने जा ही रहा था कि दक्षिण की एक बड़े युद्ध में पराजय हो गयी और उसने यह देखकर अपना निर्णय बदल दिया कि संघीय सेना विजयी होकर रहेगी ।

जब रूस पूर्व की ओर बढ़ा और जापान सागर तक पहुंच गया, तो उसका प्रतिरोध करने के लिए अमेरिका और इंगलैंड ने जापान को शस्शस्त्र तथा धन दिया। परिणामस्वरूप १९०५ में रूस और जापान का युद्ध हुआ, जिसमें रूस की नौ सेना डुबो दी गई और जब जापान अमेरिका द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक महान हो गया, तो द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ, जो प्रशान्त महासागर तक फैल गया ।

भारतीय प्रयास का विरोध स्वाभाविक

महान् शक्ति का दर्जा पाने के भारतीय प्रयास का भी वर्तमान बड़ी शक्तियों द्वारा प्रतिरोध किया जायेगा । यही कारण है कि रूस तथा अमेरिका इस बात पर एक मत है कि भारत को परमाणु-अस्त्र नहीं बनाने चाहिए । कारण बड़ा सीधा-सा है : अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों में न तो कोई स्थायी मित्र होता है और न स्थायी शत्रु, केवल हित ही स्थायी होते हैं । भारत महान् शक्तियों की पंक्ति में बैठने के लिए अग्रसर हो यह बात अमेरिका, रूस, इंगलैंड, फ्रांस और चीन के हित में नहीं है । किन्तु इसमें भारत का स्थायी हित है कि वह अपने समस्त अधिकारों और उत्तरदायित्वों सहित इस क्लब में प्रवेश करे । जो भारतीय—जानबूझ कर अनजान बनने वाले को छोड़कर इस बात को नहीं समझता है उसका निश्चय ही अपना चिन्तन नहीं है, उसका चिन्तन इस या उस विदेशी शक्ति द्वारा संचालित होता है ।

महान् भारत के लिए राष्ट्रीय एकता न केवल वांछनीय है, बल्कि स्पष्टतः व्यावहारिक भी है । राष्ट्रीय दलों को एक दूसरे पर कीचड़ उछालना अविलम्ब बंद कर देना चाहिए । उन्हें अपने छोटे-मोटे, मतभेदों को भुलाकर उन महान् लक्ष्यों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिन पर कि वे सहमत हैं। मेरा विश्वास है कि प्रसपा, संसपा, स्वतंत्र और जनसंघ इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहमत हो सकते हैं और गैर-कांग्रेस तथा गैर-कम्युनिस्ट तत्वों के मेल-जोल से प्राप्त कर सकते हैं । इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि अनेक कांग्रेसी भी इससे सहमत होंगे और तब कांग्रेस तथा प्रस्तावित संयुक्त मोर्चे द्वारा क्रियान्वित वास्तविक राष्ट्रीय एकता स्थापित होगी, जो अपने विरोधियों को विकासोन्मुख भारत के राजनीतिक क्षितिज में उपहासास्पद बना देगी । ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

? उत्तर

● अटल बिहारी वाजपेयी

संसद सदस्य

मध्यावधि चुनाव के बाद देश की राजनीतिक स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ है और चुनाव परिणामों के सम्बन्ध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

उत्तर—सन् १९६७ के आम चुनाव में भारत के राजनीतिक मानचित्र में जो परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी, १९६९ के मध्यावधि चुनाव ने उसकी पुष्टि की है। सत्ता पर पुनः एकाधिकार प्रस्थापित करने के कांग्रेस के प्रयत्न विफल हो गये हैं। पंजाब तथा प० बंगाल में कांग्रेस की निर्णायक हार हुई है। उत्तर प्रदेश और बिहार में भी उसे स्पष्ट बहुमत नहीं मिला है। यह ठीक है कि उत्तर प्रदेश और बिहार में कांग्रेस का विकल्प नहीं उभरा है, परन्तु जनता कांग्रेस को नहीं चाहती, यह उसने स्पष्ट बता दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यावधि चुनावों की दूसरी विशेष बात यह है कि अब देश एकदलीय शासन के बजाय बहुदलीय शासन के युग में आ गया है। पंजाब में अकाली-जनसंघ संयुक्त मोर्चा सत्तारूढ़ हुआ है। बिहार और उत्तर प्रदेश में जहां कांग्रेस सबसे बड़े दल के रूप में सामने आयी है, उसे पहले तो सरकार बनाने के लिए और फिर उस सरकार को टिकाए रखने के लिए सहयोगियों की आवश्यकता होगी। देखना है, कांग्रेस इमानदारी से सहयोग लेती है अथवा केरल की तरह केवल अन्य दलों का उपयोग करना चाहती है।

मध्यावधि चुनाव में अखिल भारतीय दलों का ह्रास और सम्प्रदायवादी, ज़ातिवादी तथा क्षेत्रवादी दलों का उभार एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। उत्तर प्रदेश में मुस्लिम मजलिस और भारतीय क्रान्ति दल की विजय और बिहार में अनेक छोटे-छोटे गुटों का सामने आना यह बताता है कि मतदाता को शिक्षित करने का काम जितनी तेजी से होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है।

निर्दलीय विधायकों की संख्या में कमी अवश्य ही एक शुभ लक्षण है।

चुनावों में मतदाताओं को डराने-धमकाने की घटनाएँ पहले भी होती रही हैं, किन्तु मध्यावधि चुनाव में जितने पैमाने पर मतदाता को आतंकित करने का यत्न किया गया उतना पहले कभी नहीं किया गया था। जगह-जगह पर लट्ठबन्द लोगों ने या तो जबर्दस्ती दूसरों के वोट डाले अथवा औरों को वोट डालने से बलात् रोका। यह लोकतंत्र के लिए एक खतरे की घंटी है। इसकी रोकथाम आवश्यक है।

चुनाव परिणामों का केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों पर क्या असर पड़ेगा ?

उत्तर—राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारें अब स्थायी रूप ले चुकी हैं। केन्द्र को उनके साथ अस्तित्व में रहना सीखना होगा। सब का आचरण संविधान के अनुरूप होना चाहिए। जिस प्रकार किसी गैर-कांग्रेसी दल के लिए अपनी विफलता को छिपाने के लिए केन्द्र विरोधी भावना भड़काना अनुचित होगा, उसी प्रकार केन्द्र के लिए भी राजनीतिक भेदभाव अथवा पक्षपात से काम लेना राष्ट्रीय एकता को दुर्बल करना होगा। अच्छा हो यदि केन्द्र और राज्यों के विवादों को हल करने के लिए संविधान के अनुच्छेद के अन्तर्गत एक अन्तरराज्य परिषद् का निर्माण कर दिया जाय।

महाराष्ट्र में शिव सेना की गतिविधियों तथा आंध्र में पृथक तेलंगाना की मांग के सम्बन्ध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ? विघटनकारी प्रवृत्तियों का शमन या दमन किस प्रकार किया जा सकता है ?

उत्तर—महाराष्ट्र में भाषाई उन्माद को जगाने का शिव सेना का यत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

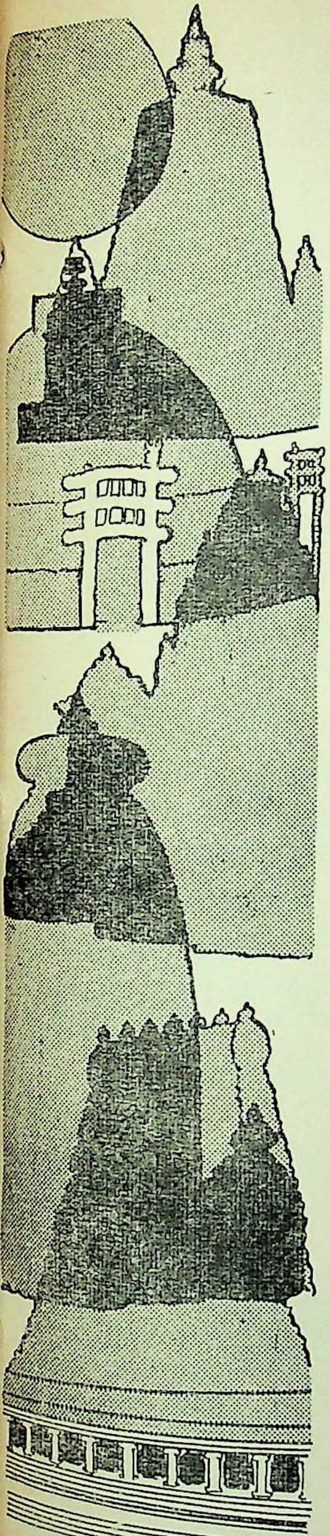

और आन्ध्र में आर्थिक पिछड़ेपन को आधार बनाकर विघटन की राजनीति को आगे बढ़ाने की कतिपय असंतुष्ट राजनीतिज्ञों की कोशिश एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सच्चाई यह है कि देश में आज सर्वत्र असंतोष, कुंठा और विफलता की बारूद फैली हुई है। छोटी-सी चिनगारी भी बड़ा विस्फोट कर सकती है। जन-असंतोष का मुख्य कारण यह है कि जनता की आकांक्षाओं और शासन की उपलब्धियों की खाई घटने के बजाय निरन्तर बढ़ रही है। लोग २० वर्ष की समृद्धि में हिस्सा चाहते हैं। त्याग और बलिदान में बराबरी की मांग कर रहे हैं। आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की गति को वेग देकर ही वर्तमान स्थिति को सुधारा जा सकता है।

विघटनकारी राजनीति के बल पकड़ने का एक बुनियादी कारण यह भी है कि गत २० वर्ष में जन-जन के मन-मन में राष्ट्र प्रेम की भावना भरने का कोई ठोस प्रयत्न नहीं हुआ। भाषा, सम्प्रदाय तथा प्रदेश की भिन्नता के बावजूद हम सब भारतीय एक हैं और हमें मिल कर अपने भविष्य का निर्माण करना है, यह संस्कार जगाने के लिए कुछ नहीं किया गया। क्या यह खेद की बात नहीं है कि चीन और पाकिस्तान के अधिकार में गयी हुई भूमि की मुक्ति के लिए कोई जान पर खेलने को तैयार नहीं है, किन्तु बेलगांव और चंडीगढ़ के लिए काफी लोग लड़ने-मरने पर आमादा हैं।

प्रश्नों को लटकाये रखने की सरकार की नीति ने भी जन-असंतोष को एकत्र होने का अवसर दिया है। सीमा विवादों को हल करने के लिए अब तक कोई सिद्धान्त तय नही किये गये हैं। चण्डीगढ़ के सम्बन्ध में शाह कमीशन की रिपोर्ट रद्दी की टोकरी में फेंक दी गयी। किन्तु महाराष्ट्र से कहा जाता है कि वह महाजन आयोग की सिफारिशों को मान लें। सरकार दोहरे मापदण्ड अपनाने की आदी हो गयी है।

जब तक कोई बड़ा धमाका न हो सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। तेलंगाना को दिये गये आश्वासनों को कार्यान्वित कराने के लिए हिंसा, हत्या, बलात्कार और अग्निकाण्डों की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए थी। शासन में न तो दक्षता है, न घटनाओं का पूर्व अनुमान लगा कर योग्य उपाय-योजना करने की कुशलता है। महाराष्ट्र तथा आन्ध्र सरकारें अपने कर्तव्य पालन में पूर्णतया विफल रही हैं। उन्हें त्यागपत्र दे देना चाहिए। किन्तु वे पदों पर जमी रहेंगी और विघटन का कारवां नये शिकारों की खोज में आगे बढ़ता रहेगा।

क्या मध्यावधि चुनाव के परिणाम देश में राजनीतिक स्थिरता लाने में सहायक होंगे ?

उत्तर—जब दिलों और दिमागों में ही स्थिरता नहीं है तब राजनीति में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्थिरता कहां से आयेगी ? देश संक्रमण-काल में से गुजर रहा है। पुरानी संस्थायें और मान्यतायें टूट रही हैं, किन्तु नये मूल्य और नये मानदण्ड स्थापित नहीं हो पा रहे हैं। एक दृष्टि से यह संकट हमारा ही नहीं, विश्व मानवता का संकट है। हमें इसके साथ जीवित रहना सीखना होगा। आर्थिक विकास के लिए राजनीतिक स्थिरता वांछनीय है, किन्तु बिना स्थिरता के विकास हो ही नहीं सकता, यह सोचना गलत होगा। पंजाब में गत २० वर्षों में शायद ही कभी शान्ति तथा स्थिरता रही हो। किन्तु पंजाब प्रगति की दौड़ में काफी आगे है। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और राजस्थान में गत १६ वर्ष तक एक दलीय शासन के कारण राजनीतिक स्थिरता रही, किन्तु आर्थिक विकास नहीं के बराबर हुआ।

यदि जनता में आगे बढ़ने का संकल्प हो और उसके अनुरूप कठिन परिश्रम करने की तैयारी हो, तो राजनीतिक खींचतान के बावजूद आर्थिक प्रगति हो सकती है। आवश्यक है कि सरकार क्षमता से अधिक भार उठाने का यत्न न करे और जनता को अपने पैरों पर खड़ा होने का अवसर दे। जन्म से लेकर मृत्यु तक सरकार का मुखापेक्षी रहने का जो भाव गत कुछ वर्षों में पैदा किया गया है उसमें भी सुधार लाने की आवश्यकता है।

आर्थिक नियोजन की वरीयताओं तथा व्यूह रचना में ऐसा परिवर्तन होना चाहिए जिससे विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीकी ज्ञान पर हमारी निर्भरता कम हो और देश की श्रम-शक्ति तथा प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करके हम आगे बढ़ सकें। शिक्षित बेकारों की समस्या पर अविलम्ब ध्यान देना आवश्यक है।

हमें वर्तमान संक्रमण काल की अवधि को कम करने की कोशिश करनी चाहिए। किन्तु मुझे लगता है कि स्थिति सुधरने के पहले कुछ और बिगड़ेगी। हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु असावधानी खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

○ ○

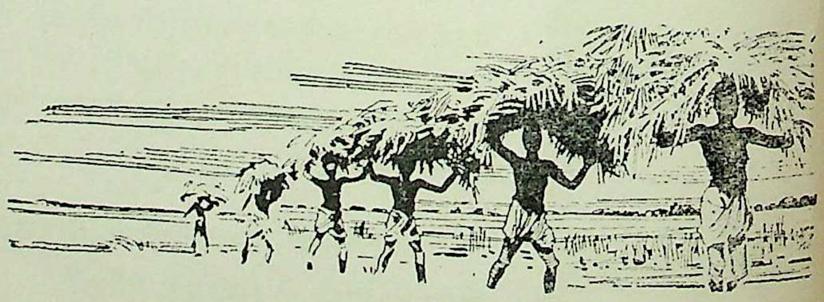

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली में जनसंघ

● मदनलाल खुराना
नगर पार्षद

दिल्ली में जनसंघ की सफलता की कहानी उन कठोर संघर्षों की गाथा हैं, जो अनेक वर्ष से जन कल्याण के लिए किये जा रहे हैं। कांग्रेस ने अपने २० वर्षीय शासन काल में अनेक ऐसी बाधाएं खड़ी कर दी थीं जिनसे दिल्ली नगर निगम व प्रशासन में पहुंचते ही जनसंघ को जूझना पड़ा। इनके अतिरिक्त कांग्रेस आज भी उन बखेड़ों को खड़ा करने के लिए प्रयत्नशील है और कदम-कदम पर विघ्न पैदा करने की नीति का अनुसरण कर रही है, परन्तु जनसंघ ने धैर्य और साहस के साथ अनेक बाधाओं को पार कर दिल्ली नगर निगम व प्रशासन के संचालन में सफलता प्राप्त की है। दिल्ली प्रशासन का हरेक संस्थान कांग्रेस द्वारा जनतन्त्र एवं जनहित विरोधी किये गये कृत्यों की कहानी सुना रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हम महानगर परिषद से विचार प्रारम्भ करें। न तो वह पूर्णरूप से विधानसभा ही है और न वह स्थानीय स्वायत्त शासन संस्था। यह पंगु संस्था दिल्ली को कांग्रेस ने ही दी है। वस्तुतः यह महानगर परिषद कांग्रेस ने नगर निगम के प्रथम चुनाव में जनसंघ से पराजय प्राप्त करने के कारण ही स्थापित की। जब कांग्रेस को ८० स्थानों में से केवल २७ स्थान मिले और जनसंघ समर्थित प्रत्याशी दिल्ली का प्रथम महापौर बना तब कांग्रेस नेताओं ने इस नयी संस्था को जन्म दिया, जो अधिकारों की दृष्टि से निष्प्रभ और कर्तव्य की दृष्टि से बोझिल है।

केन्द्र के कांग्रेस नेताओं को आरम्भ से ही जनसंघ की बढ़ती हुई लोकप्रियता का डर था। इस कारण वह महानगर परिषद के अधिकारों के बारे में एकदम कोई कदम उठाना नहीं चाहती थी। उसकी मंशा यह थी कि यदि फरवरी-मार्च १९६२ के आम चुनावों में कांग्रेस पूर्ण बहुमत से महानगर परिषद में सत्तारूढ़ हो जाती है, तो उसे अधिक से अधिक अधिकार दे दिये जायं और यदि ऐंसा नहीं होता, तो अधिक से अधिक विभाग उप-राज्यपाल के अधीन रखकर अपना सिक्का जमाये रखा जाय। इस प्रकार अधिनियम में हस्तांतरित और अहस्तांतरित विषय—दो प्रकार की सूचियां रखी गयीं।

हस्तातरित या अहस्तांतरित करने की व्यवस्था का सहारा लेकर केन्द्रीय सरकार ने गृह, आवास और सेवांएं ये तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण विभाग कार्यकारी परिषद और महानगर परिषद के क्षेत्राधिकार से छीन कर उप-राज्यपाल के अधीन रख लिये। लोकप्रिय दिल्ली प्रशासन ऐसा शासन या प्रशासन है जिसके पास शासन करने का कोई साधन नहीं है। कैसी विडम्बना है कि हमसे दिल्ली के चतुर्मुखी सुधार और उन्नति की अपेक्षा है, पर पुलिस, कानून और व्यवस्था हमारे हाथ में नहीं है। दिल्ली की सब नागरिक समस्याएं हल करने की जिम्मेदारी महानगर परिषद और कार्यकारी परिषद की है, पर ये दोनों नागरिकों के लिए मकान नहीं बनवा सकतीं। आज सभी बड़े नगरों या महानगरों में सबसे बड़ी समस्या क्या है? मकान, और मकान ही हमारे हाथ में नहीं।

निर्वाचित प्रतिनिधियों की स्थिति

इसके अतिरिक्त शासन हमारा, पर शासकीय कर्मचारी हमारे पास नहीं। बड़ी मनोरंजक बात यह है कि कार्यकारी परिषद (जिसमें इस समय मुख्य कार्यकारी परिषद सहित चार कार्यकारी पार्षद हैं) निर्वाचित महानगर परिषद के लिए उत्तरदायी नहीं, बल्कि गृह मन्त्रालय के लिए उत्तरदायी है।

इस प्रकार भारत सरकार ने महानगर परिषद को जन्म से ही वैधानिक सौतियापन का शिकार बनाया है और इसमें जनसंघ का सत्तारूढ़ होना सबसे बड़ा कारण है। यदि अब दिल्ली में कांग्रेस की सत्ता होती, तो क्या भारत-सरकार का यही रवैया होता? उत्तर है, कदापि नहीं।

दिल्ली के नागरिक जीवन और उनकी समस्याओं तथा उनके प्रवन्ध का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक सम्बन्ध दिल्ली नगर निगम से है। दिल्ली नगर निगम ही देश भर में ऐसा नगर निगम है, जो केवल शहरी क्षेत्र तक ही सीमित नहीं, बल्कि इसके अधीन काफी बड़ा ग्रामीण क्षेत्र भी है।

१९५७ से १९६७ के बीच के दशक में दिल्ली नगर निगम पर कांग्रेस का एकछत्र राज्य रहा। वह भ्रष्टाचार और अंधेरगर्दी का साम्राज्य कहा जा सकता है। सस्ती लोकप्रियता के लिए कांग्रेस करों की वसूली पर ध्यान नहीं देती थी और जो घाटा होता था उसे केन्द्रीय सरकार पूरा कर देती थी, क्योंकि आखिर दिल्ली में कांग्रेस को जिन्दा जो रखना था। सारी राजधानी एक विशाल नरक या गन्दी बस्ती बनती जा रही थी। मकानों, बसों, पानी, बिजली, सफाई आदि की हालत बिगड़ती चली गयी। कभी-कभी दिखावटी रूप से केन्द्रीय नेता दिल्ली कांग्रेस की आलोचना कर देते थे, पर निगम के करोड़ों रुपये के घाटे को पूरा करने की कभी उन्हांने परवाह नहीं की। हालत यहां तक बिगड़ी कि निगम के पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने के लिए पैसा नहीं, ठेकेदारों के बिलों के भुगतान के लिए कौड़ी नहीं। निगम के नाम पर व्यापारी १०० रुपये की चीज सप्लाई करने को भी तैयार नहीं था। ऐसी हालत में दिल्ली के सुधार और विकास की तो बात ही कौन सोच सकता था।

ऐसी हालत में कांग्रेस को २० वर्ष के कुशासन से तंग आकर जनता ने गद्दी से उतार दिया और जनसंघ को कांटों का ताज पहनाकर नगर निगम और महानगर परिषद, दोनों में बहुमत से गद्दी पर बिठा दिया। कांटों के ताज के साथ ही खजाना भी खाली मिला। जिस दिन जनसंघ के सदस्यों ने नगर निगम की बगाडोर सम्भाली, तो आपको जानकर आश्चर्य हुआ होगा कि निगम के खजाने में मुश्किल से दो लाख रुपया था।

जब सब वैधानिक सौतियापन के प्रयत्न निष्फल रहे तब जनसंघ नियंत्रित नगर निगम का गला घोटने की कोशिशें आरम्भ हुई। पहले तो कांग्रेसी क्षेत्र अपने नियन्त्रित और समर्थक समाचारपत्रों द्वारा इस प्रकार की खबरें उड़ाते रहे कि नगर निगम अब गया और तब गया अर्थात् भारत सरकार उसे आज या कल समाप्त करने वाली है। कारण यह कि उसकी वित्तीय स्थिति इतनी बिगड़ गयी है कि उसे सुधारा नहीं जा सकता। आखिर यह नौबत आ गयी और गृहमन्त्री ने दिल्ली नगर निगम को समाप्त करने की ठान ही ली। पर किसी प्रकार यह बात खुल गयी और दिल्ली की जनता ने इतना रोष प्रकट किया कि आदेश जारी नहीं हो सका।

राजनीतिक बेईमानी का नमूना

गत आम चुनाव से पूर्व १९६६ में भारत सरकार ने दिल्ली नगर निगम की शोचनीय दशा पर विचार करने के लिए रेड्डी आयोग को नियुक्त किया। फरवरी, १९६७ में इस कमीशन ने अपनी सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों में कहा गया कि नगर निगम को ठीक ढंग से चलाने के लिए केन्द्र द्वारा ५ करोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये के ऋण तुरन्त दिये जायं, जिससे निगम की आर्थिक स्थिति सुधर सके। रेड्डी आयोग ने यह भी सिफारिश की कि दो करोड़ रुपये का अनुदान भी नगर निगम को तुरन्त दिया जाय। भारत सरकार के गृहमन्त्रालय ने इन सिफारिशों को फरवरी, १९६७ में प्रकाशित किया, परन्तु चुनाव के परिणाम देखकर कांग्रेस की केन्द्रीय सरकार चौंकी और उसे जनता का यह निर्णय न भाया। चुनाव परिणाम प्रकाशित होते ही भारत सरकार ने रेड्डी आयोग की सिफारिशें वापस ले लीं। इससे बढ़कर राजनीतिक बेईमानी और क्या हो सकती है।

कुछ समय बाद भारत सरकार ने एक और 'मुरारका आयोग' का गठन किया। इसके जिम्मे यह काम लगाया कि नगर निगम की आर्थिक स्थिति की जांच करे और इसे सुधारने का उपाय बताये।

'मुरारका आयोग' ने अपनी अन्तरिम सिफारिशें अभी भारत सरकार को भेजी है। इन सिफारिशों में यह कहा गया है कि नगर निगम को दिल्ली की जनता पर और टैक्स लगाने चाहिए। इन सिफारिशों के प्रकाशित होने के पश्चात भारत सरकार ने नगर निगम को नाना प्रकार की धमकियां दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कि यदि दिल्ली की जनता पर टैक्सों का बोझ न बढ़ाया गया, तो उचित कार्यवाही की जायगी।

एक तरफ केन्द्रीय सरकार के कांग्रेसी नेताओं ने नगर निगम को यह कहा कि अगर निगम को सुचारु रूप में चलाने के लिए केन्द्र से आर्थिक सहायता चाहते हो, तो दिल्ली की जनता पर टैक्स बढ़ाओ और दूसरी ओर दिल्ली के कांग्रेसी नेताओं ने जनता में गलत प्रचार शुरू किया है कि जनसंघ दिल्ली की जनता पर टैक्सों का बोझ बढ़ाना चाहता है।

जनसंघ के लोकप्रिय नेता इस चाल को समझ गये और उन्होंने यह निश्चय किया कि नगर निगम की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए गरीब जनता पर टैक्स नहीं बढ़ायेंगे। अन्य रास्ते खोजे जाने लगे।

मुरारका आयोग की मुख्य सिफारिशें इस प्रआर हैं :—

(१) हाउस टैक्स कम से कम १५ प्रतिशत कर दिया जाय और २४ प्रतिशत तक जाना चाहिए।

(२) उद्योग और वाणिज्य के उपयोग में आने वाली सब सम्पत्ति पर इसके अतिरिक्त ५ प्रतिशत अधिक टैक्स लगाया जाय।

(३) वाटर टैक्स कम से कम ४ प्रतिशत किया जाय।

(४) सफाई टैक्स कम से कम अढाई प्रतिशत किया जाय।

(५) दिल्ली नगर निगम एक्ट अथवा दिल्ली किराया नियन्त्रण एक्ट में इस प्रकार का संशोधन किया जाय कि हाउस टैक्स में ५० प्रतिशत तक वृद्धि की जा सके और मालिक मकान को किरायेदार से हाउस टैक्स वसूल करने की सुविधा प्राप्त हो सके। इस सिफारिश से हाउस टैक्स का बोझ मालिक मकान की बजाय किरायेदार पर पड़ जायेगा।

(६) शिक्षा टैक्स लगाया जाय।

(७) नौकरी टैक्स, व्यापार टैक्स और व्यवसाय टैक्स लगाया जाय।

(८) चुंगी टैक्स को अधिक से अधिक बढ़ाया जाय और ज्यादा बढ़ाने के लिए एक्ट में संशोधन किया जाय।

(९) विज्ञापन टैक्स, जानवर टैक्स और गाड़ी टैक्स को बढ़ाया जाय।

(१०) साइकिल टैक्स बढ़ाया जाय।

नये टैक्स की जरूरत नहीं

मुरारका आयोग ने कहा कि ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए केन्द्रीय सरकार को १ करोड़ १५ लाख रुपया प्रतिवर्ष दिल्ली नगर निगम को देना चाहिए। इसके बारे में केन्द्रीय सरकार बिलकुल चुप है।

मुरारका आयोग ने यह भी कहा कि केन्द्रीय सरकार की जितनी सम्पत्ति नगर निगम के क्षेत्र में आती है उसकी देखरेख और उसे नगर निगम जो सुविधाएं देती है उसका शतप्रतिशत पूरा खर्च केन्द्रीय सरकार को उठाना चाहिए। इस समय इस सारे खर्च का केवल ७५ प्रतिशत भाग दिल्ली नगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
निगम को मिलता है। यदि मुरारका आयोग की यह सिफारिश मान ली जाय, तो लगभग ३५ लाख रु० प्रतिवर्ष नगर निगम को भारत सरकार से और मिलेंगे।

भारत सरकार ने नगर निगम को लगभग ९ करोड़ रु० देने हैं, जिसके लिए पिछले कई सालों से वाद-विवाद हो रहा है। अब मुरारका आयोग ने यह सुझाव दिया है कि इस राशि का फैसला केन्द्रीय सरकार को जल्दी करना चाहिए। इस प्रकार नगर निगम ने नयी दिल्ली नगरपालिका से ३ करोड़ रु० लेने हैं, जिसके लिए कई बार मांग की जा चुकी है। यदि यह सारी राशि नगर निगम को दे दी जाय, तो किसी भी नये टैक्स लगाने या पुराने टैक्स को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं रहती।

नगर निगम को केन्द्र द्वारा केवल वह सारी राशि ही नहीं दी गई, जो उसे मिलनी चाहिए थी, अपितु जो राशि प्रतिवर्ष मिलती थी वह भी इस वर्ष काट ली गयी है। भारत सरकार ने दिल्ली परिवहन को नयी बसें खरीदने के लिए जो ८० लाख रुपये के ऋण देने का आश्वासन दिया था उसे इस साल पूरा नहीं किया। इसी तरह भारत सरकार ने दिल्ली नगर निगम के पीने के पानी की योजनाएं चलाने के लिए जो अढाई करोड़ रुपये के ऋण देने का आश्वासन दिया था उसे भी पूरा नही किया।

यदि जनसंघ आज दिल्ली नगर निगम में और महानगर परिषद में बहुमत दल के रूप में न होता, तो दिल्ली के नागरिकों को आज से दस गुणा अधिक टैक्स देना पड़ता। ऐसी स्थिति को रोकने के लिए जनसंघ ने पूरी निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। परन्तु नगर निगम के कार्यभार को चलाने के लिए जिसके लिए जनसंघ दृढसंकल्प है, नगर निगम की आय को बढ़ाना भी आवश्यक है।

इसलिए जहा बहुत से ऐसे टैक्स कम किये गये, जिससे गरीब जनता पर बोझ पड़ता था, वहां थोड़ी-सी वृद्धि ऐसे टैक्सों में की गई, जिसका धनवान वर्ग पर पड़ता है। ईश्वर ने उनको टैक्स देने की शक्ति दी है, तो दिल्ली की भलाई के लिए उन्हें तो टैक्स देना ही चाहिए।

उदाहरणस्वरूप साइकिल टैक्स, जिसका बोझ गरीब जनता पर पड़ता था जनसंघ ने केवल २५ पैसे प्रतिवर्ष करके नहीं के बराबर कर दिया है, जिससे दिल्ली के ५ लाख से अधिक साइकिल वालों को राहत मिली है।

छोटे मकान वालों पर हाउस टैक्स ११ प्रतिशत से कम कर १० प्रतिशत किया गया है। मनोरंजन कर में थोड़ा-सी वृद्धि अनिवार्य थी, क्योंकि पड़ोसी राज्यों में जैसे उत्तर प्रदेश और हरियाणा आदि में यह टैक्स दिल्ली से कहीं अधिक था। इसकी वृद्धि से गरीब जनता पर बोझ नहीं पड़ा। केवल उनको थोड़ा-सा अधिक कर देना पड़ेगा, जो अपने मनोरंजन के लिए सिनेमा इत्यादि देखना चाहते हैं। इसी तरह कार, मोटर गाड़ी आदि चलाने वालों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी और अधिक टैक्स देना पड़ेगा ।

चौथी योजना का सवाल

दिल्ली प्रशासन ने चौथी पंचवर्षीय योजना के लिए ४ अरब रुपये की राशि की मांग की थी और इसके लिए अनेक योजनाएं बना कर केन्द्रीय सरकार को भेजी, जिसके अनुसार १९६९-७० में ६९.४ करोड़ रुपये की राशि की मांग की । इसके अतिरिक्त यह भी निर्णय हुआ था, कि जो राशि बचत द्वारा और दूसरे टैक्सों की योजनाओं के द्वारा, जिन्हें दिल्ली प्रशासन बढ़ायेगा, उसे भी योजना-विकास के क्षेत्र में खर्च करने का अधिकार दिल्ली प्रशासन को होगा ।

परन्तु इस आश्वासन का भी उल्लंघन किया जा रहा है और भारत सरकार अपने किये गये वायदों को पूरा नहीं कर रही । आगामी वर्ष दिल्ली प्रसाशन की बचत की योजनाओं द्वारा ३ करोड़ रुपया और मिलना चाहिए, परन्तु इसका उल्लेख १९६९-७० के बजट में नहीं किया गया । जो आश्वासन योजना आयोग, गृहमन्त्रालय और वित्तमंत्रालय की ओर से दिल्ली प्रशासन को दिये गये, उन्हें पूरा किया जाना चाहिए ।

जनसंघ की सफलता

जनसंघ की एक सफलता यह है कि उसने दिल्ली के लिए अलग शिक्षा बोर्ड स्थापित कराया । १९६२ तक दिल्ली का अपना माध्यमिक शिक्षा बोर्ड था, पर उसके बाद भारत सरकार ने उसके स्थान पर एक केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड स्थापित किया और शिक्षा के केन्द्रीयकरण के नाम पर दिल्ली की थोड़ी-सी स्वायत्तता को भी समाप्त कर दिया । पांच प्रतिशत विद्यार्थियों के हित के लिए दिल्ली के विद्यार्थियों के भविष्य को बाहर के लोगों के हवाले पर दिया गया । जनसंघ ने शासन संभालते ही दिल्ली के लिए फिर से पृथक माध्यमिक बोर्ड स्थापित करने की मांग की और दिल्ली महानगर परिषद ने इसके लिए एक प्रस्ताव स्वीकार किया ।

केन्द्रीय सरकार की ओर से दलील दी गयी कि देश भर के केन्द्रीय स्कूलों के विद्यार्थियों और कुछ केन्द्र शासित क्षेत्रों के विद्यार्थियों के हित के लिए केन्द्रीय बोर्ड रखना आवश्यक है । अब तनिक तथ्यों की ओर ध्यान दीजिए । पिछले वर्ष केन्द्रीय माध्यमिक बोर्ड की परीक्षा में लगभग ३२,००० विद्यार्थी बैठे । उनमें से केवल ३,००० बाहर के थे और शेष २९,००० दिल्ली के थे । यह भी कहा गया है कि दिल्ली में, क्योंकि भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी रहते हैं, इस कारण दिल्ली का माध्यमिक बोर्ड बनाने में उनको हानि पहुंचेगी ।

दिल्ली में परीक्षा प्रणाली में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया है । पिछले ३०-४० वर्ष से देश के सभी सुविज्ञ और शिक्षाशास्त्री प्रायः वर्ष में एक बार की परीक्षा व्यवस्था के विरुद्ध रहे हैं । किन्तु रट-रटा कर पास होने की सुविधा वाली वार्षिक परीक्षा प्रणाली बदलने का साहस किसी ने नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। यह साहस जनसंघ के दिल्ली प्रशासन ने दिखाया। अब ५वीं, ८वीं और ११वीं कक्षाओं को छोड़कर हर कक्षा में निरन्तर और नियमित एक-सी शिक्षा और परिश्रम तथा उपस्थिति पर जोर दिया जाता है और उसी के अनुसार अगली कक्षा में जाने की योग्यता न रखने का निर्णय किया जाता है।

मुस्लिम 'वक्फों' का प्रबन्ध भी दिल्ली प्रशासन का एक हस्तांतरित विषय है, अर्थात् वक्फ बोर्ड के सदस्यों की नामजदगी दिल्ली प्रशासन के अधिकार में है। पर मुसलमानों और उनसे सम्बन्धित हर वस्तु या संस्था को तो कांग्रेस अपनी बपौती समझती है। उनका भला-बुरा करना वह अपना एकाधिकार समझती रही है। उसे यह कैसे सहन हो सकता है कि मुसलमान जनसंघ के निकट आयें या उनके वक्फ़ बोर्ड में कोई जनसंघ का नामजद व्यक्ति हो। कांग्रेस को इस बात से भी जबर्दस्त धक्का लगा है कि वह अपने टिकट पर दिल्ली में एक भी मुसलमान को महानगर परिषद में नहीं चुनवा पाई, जबकि जनसंघ के टिकट पर दिल्ली के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित, योग्य और विद्वान मुसलमान सदस्य श्री अनवर अली देहलवी महानगर परिषद में पहुंचे हैं। १९६७-६८ में वक्फ बोर्ड के लिए जनसंघ प्रशासन ने जो नाम भेजे उन्हें अस्वीकार कर दिया गया। इसमें केन्द्र के एक मुस्लिम मंत्री का बहुत बड़ा हाथ रहा।

नयी दिल्ली नगरपालिका को केन्द्र ने अपने हाथ में रखा है। नयी दिल्ली को अभी तक भारत सरकार ने लोकतंत्र के वायुमंडल में सांस नहीं लेने दी है। जनसंघ हमेशा से ही नयी दिल्ली नगरपालिका को निर्वाचित और जनप्रतिनिधि निकाय बनाने के पक्ष में रहा है। भारत सरकार ने यह बात नहीं मानी। राजनीति के हर विद्यार्थी को इस बात पर और भी आश्चर्य होता है कि नयी दिल्ली क्षेत्र से लोकसभा के लिए तो एक प्रतिनिधि चुना जा सकता है, पर नगरपालिका के लिए नहीं।

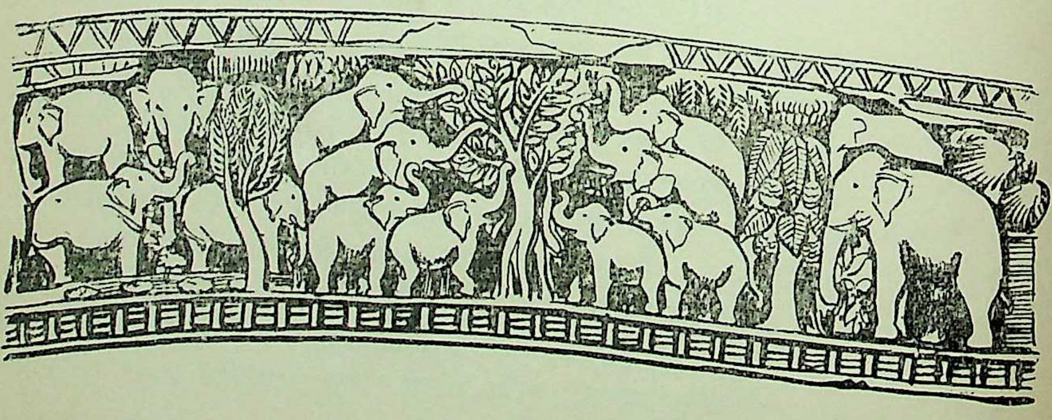

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केरल में लोकतांत्रिक विकल्प

भारतीय जनसंघ

● पी० परमेश्वरन्

१९६५ में केरल राज्य की अध्ययन यात्रा की परिसमाप्ति पर श्री डी० आर० मणकेकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दि रेड रिड्ल आफ केरल" में अपने अनुभवों को इस प्रकार व्यक्त किया—"केरल के समक्ष कार्य केवल इतना ही नहीं है कि वह राजनीतिक अस्थिरता से स्वयं को मुक्त करे, बल्कि मतपत्रों के माध्यम से कम्युनिस्ट शिकंजे में फंसने से अपने को बचाना भी है। इसके लिए किसी साधनयंत्र को गढ़ा जाना चाहिये। क्योंकि और कोई दल ऐसा नहीं है। इसलिए भली या बुरी, जैसी भी है कांग्रेस है, इसी को साधनयंत्र बनना है। इस खाई को पाटने के लिए जैसी की १९६० में थी, एक बार फिर राज्य की लोकतांत्रिक शक्तियों के लिए कांग्रेस ही शक्तिशाली और विश्वसनीय यंत्र है।"

लेखक ने अंत में यह निष्पादित किया कि "यदि केरल को साम्यवाद से बचाना है, तो कांग्रेस उच्चसत्ता को निश्चय ही इस समस्या को सर्वोच्च वरीयता देनी चाहिये और केरल के कांग्रेस संगठन को व्यवस्थित करने का सीधा दायित्व लेना चाहिये। यह अच्छी तरह समझ लिया जाय कि १९६७ के चुनावों के पहले के दो वर्षों का उपयोग अपने को संगठित करने में यदि कांग्रेस विफल हुई तो केरल कम्युनिस्ट हाथों में चला जायेगा। वैसे तो अभी ही काफी विलम्ब हो गया है।"

कांग्रेस—जो विफल हो गयी

१९६७ के चुनाव परिणामों से यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि कांग्रेस अपना कार्य नहीं कर पायी। केन्द्र और अन्य अनेक राज्यों की तरह केरल में भी कांग्रेस १९६७ में जीवनकाल के निम्नतम धरातल पर पहुंची। १३३ सदस्यों के सदन में केवल ९ स्थान प्राप्त कर यह इतनी निर्बल हो गयी कि मान्यता प्राप्त विरोधी दल के अवसर से भी वंचित रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में केरल कांग्रेस का इतिहास तीव्र गति से पराभव का रहा है। आत्मघाती नीतियों के परिपालन, व्यक्तिगत अहंकार, ईर्ष्या तथा साम्प्रदायिक गुटबाजी से ध्वस्त, अनुशासनहीनता एवं सर्वोच्च सतह के लोगों के द्वारा भयानक भ्रष्टाचार आदि के कारण यह दल केरली जनता की अपेक्षाओं से दिनानुदिन गिरता ही गया। दूसरी ओर कम्युनिस्ट पार्टी वैकल्पिक दल के रूप में बढ़ रही थी। यह दल अपने कठोर अनुशासन के लिए विख्यात था। इसने केरल की सर्व सामान्य जनता तथा शिक्षित बेकारों को, जो केरल का एक बहुत बड़ा समूह है, अपनी ओर आकृष्ट किया। इसमें वे कांग्रेसी समर्थक जुड़ गये जो आन्तरिक विघटन, टंटेबाजी और विश्वासघातों से निराश हो गये थे। इस तरह अपनी निराशा में से उन्होने कम्युनिस्टों को अप्रत्यक्ष समर्थन दिया। ५७, ६० और ६५ के चुनावों की पराजय कांग्रेस मस्तिष्क में सद्बुद्धि की प्रेरणा न दे सकी। १९५७ के चुनाव परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि कम्युनिस्ट इतनी शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, जिससे वे स्वयं मंत्रिमण्डल बनाने में सक्षम हो सकें। १९६० के चुनाव परिणामों ने यह प्रमाणित कर दिया कि कम्युनिस्टों से समस्त शक्तियों के संयुक्त संघर्ष से ही कम्युनिस्टों को सत्ता पर अधिष्ठित होने से रोका जा सकता है। १९६५ के चुनाव परिणामों ने यह प्रमाणित किया कि विभाजन के उपरान्त भी कम्युनिस्ट पार्टी बहुत बड़ी शक्ति के रूप में संगठित है; मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी भारी विजय प्राप्त करने में सक्षम है और १९६५ के चुनाव परिणामों से शिक्षा लेकर दक्षिण और वामपंथी कम्युनिस्टों के साथ छोटे-छोटे अन्य दल मिलकर १९६७ में संयुक्त रूप से चुनाव लड़ेंगे। किन्तु कांग्रेस, जो इस तरह की किसी शिक्षा के लिए अभेद्य है, जिसने अन्य प्रजातांत्रिक शक्तियों के साथ मिलकर खड़े होने के दरवाजे बन्द कर रखे हैं, १९६७ के चुनावों में इस तरह निर्मूल हुई कि जैसा उसके प्रबल विपक्षी भी आशा नहीं कर रहे थे। इस तरह यद्यपि कांग्रेस आज सबसे बड़ा विरोधी दल है (कांग्रेस ९, केरल कांग्रेस ५, निर्दलीय २) इसने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि वे कम्युनिस्टों को हटा कर उसका विकल्प प्रस्तुत नहीं कर सकते।

कम्युनिस्ट-विघटन की ओर

लेकिन क्या कम्युनिस्ट केरल में सर्वशक्तिमान हैं? क्या सचमुच केरली जनता कम्युनिस्ट हो गयी है? क्या पुनः कम्युनिस्ट विजय यह सिद्ध करती है कि केरल तीव्रता से कम्युनिस्ट होता जा रहा है। ये प्रश्न आज स्पष्टतः उत्तर चाहते हैं। उसी पुस्तक में लिखते हुये मणकेकर लिखते हैं इस तरह सत्ता में कांग्रेस के असन्तोषजनक कारनामों ने १९५७ के चुनाव में कम्युनिस्ट विजय का मार्ग प्रस्तुत किया था। इस दल ने चुनावों का सामना अत्यन्त दयनीय अवस्था में किया। भ्रष्टाचार के आरोपों से इसका नाम कुख्यात हो चुका था, आन्तरिक बिखराव से टूटा हुआ, चारों ओर से तिरस्कृत, अत्यन्त ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुत्साहित'।

इस तरह यह लगभग एक कांग्रेस विरोधी मतदान था, जिसने कम्युनिस्टों को एक भव्य परिणाम प्रस्तुत करने में अप्रत्यक्ष सहयोग दिया। यह मतदान कांग्रेस विरोधी अधिक था और कम्युनिस्ट समर्थक कम। जहां तक १९६७ का प्रश्न है कम्युनिस्ट नियंत्रित मोर्चे की भारी विजय निश्चय ही चुनाव व्यूह की कुशल परियोजना की है, जिसका रहस्य ही कांग्रेस विरोधी मत को मोर्चे के पक्ष में ले लेने में निहित है। यहां तक कि कम्युनिस्ट भी यह दावा नहीं करते कि यह मतदान कम्युनिस्ट समर्थक है।

मतदान का यह नकारात्मक समर्थन केवल इससे प्रमाणित हो जाता है कि १९५७ के २ वर्ष बाद ही जनता कम्युनिस्टों से बिल्कुल निराश हो गयी और विद्रोह पर उतारू हो गयी। वह ऐतिहासिक मुक्ति आन्दोलन, जिसने प्रथम कम्युनिस्ट सरकार को उतारा और तत्पश्चात् १९६० के चुनावों में कम्युनिस्ट विरोधी शक्तियों की भारी विजय, इस तथ्य का प्रमाण है।

इसी तरह १९६७ के चुनावों के उपरान्त भी कम्युनिस्ट पार्टी को बढ़ते हुए विरोध का सामना करना पड़ रहा है। इस बार पार्टी के लिए एक खतरा खड़ा हो रहा है। पार्टी के अन्दर वाम और दक्षिण का विभाजन ही नहीं (जिसे वामपंथी दल ने सफलतापूर्वक केरल में पार कर लिया) बल्कि वे बिखराव जो अभी काफी हद तक अज्ञात हैं पार्टी को घुन की तरह खा रहे हैं। वामपंथी कम्युनिस्ट दल आज बहुत ही बुरी दशा में है। बायें के भी बिल्कुल बायें लोग टूट गये हैं। यह क्रम बिना रुके चलता जा रहा है।

अपने समय के बड़े-बड़े पक्के कम्युनिस्टों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई आज सामान्य कार्यकर्त्ता को हतप्रभ ही नहीं कर रही वरन् बहुत हद तक पूरी पार्टी का हौसला तोड़ रही है। आज वामपंथी कम्युनिस्ट पार्टी केरल में अनुशासित और सुसंगठित दल का बिम्ब नहीं बनाती, न ही यह दल कार्यकर्त्ताओं में आशा और विश्वास की प्रेरणा का भावोदय करता है। आपसी संघर्ष ने अनेक बड़े नेताओं को जनता की नजरों में गिरा दिया है। और फिर अनवरत चली आ रही क्रान्ति का उपदेश, संसदीय प्रजातंत्र की खुली भर्त्सना, कानून के शासन और संविधान को तोड़ने की वकालत और सबसे बड़ी बात कि जनता के लिए कुछ भी विधायक उपलब्धि का अभाव आदि ने निश्चय ही मतदाताओं के एक बड़े वर्ग को इनका विरोधी बना दिया है। मार्च ६७ के पालिका के चुनाव परिणामों में इस प्रवृति को देखा जा सकता है, जब कांग्रेस अनेक कांग्रेस गढ़ों में तुलनात्मक दृष्टि से आसानी से पैर जमा सकी। कम्युनिस्टों ने इससे लेकर पंचायत चुनावों को स्थगित कर दिया।

आगे यह स्पष्ट हो जायेगा कि कैसे कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों जनता को सन्तुष्ट करने में विफल रहे। एकान्तर समर्थन, जो क्रमशः इन दोनों को दिया गया यह सिद्ध करता है कि एक विशेष काल में उनकी घृणा एक के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति दूसरे से अधिक थी। लेकिन तथ्य यही है कि दोनों ही प्रमुख दल केरल की जनाकाक्षाओं को सन्तुष्ट करने में और राज्य की समस्याओं का समाधान करने में विफल रहे। कोई भी दल, जो इस कठिन कार्य को पूरा करने की इच्छा रखता हो उसे केरल की समस्याओं का अति सावधानीपूर्वक अध्ययन करना होगा। यह पता करना होगा कि कांग्रेस और कम्युनिस्ट क्यों और कहां निष्फल रहे और तब सफलता का सही मार्ग चुनकर पक्के इरादे से उसके पीछे लगना होगा।

केरल को समस्यामय राज्य कहा जाता है। क्या सचमुच ही केरल के बारे में कुछ विशेष है ? या बाकी प्रदेशों जैसी समस्यायें ही यहां कुछ अधिक हैं ? वस्तुतः तथ्य यह है कि केरल की कुछ बड़ी हैरान कर देने वाली समस्यायें हैं दर्दनाक गरीबी और अस्थिर राजनीति। इन दो समस्याओं ने केरल को अनवरत परेशान किया है। राजनीतिक अस्थिरता की जड़ें यहां की साम्प्रदायिक राजनीति में हैं। इसके अलावा अनुशासनहीनता, विशेष रूप से केरल के व्यक्तिगत स्वभाव की तथा स्वार्थीपना सर्वत्र परिव्याप्त है। गरीबी तथा बेरोजगारी ने विशेषरूप से शिक्षितों में राजनीतिक स्थिति को विस्फोटक बना दिया है। बेहद गरीबी ने जो अपने को खाद्याभाव तथा बेरोजगारी में अभिव्यक्त करती है, लगातार वृद्धिगत आबादी तथा औद्योगीकरण के अभाव के कारण है, जिसका परिणाम खेतों पर आबादी के बोझ की वृद्धि में होता है।

साम्प्रदायिक राजनीति

जब हम केरल की राजनीतिक अस्थिरता के बारे में विचार करते हैं, जो राज्य का मुख्य रोग रहा है, हमारा श्री मणकेकर के विचारों को देखना अच्छा रहैगा। 'दो तत्व राज्य की राजनीतिक अस्थिरता बनाये हुए हैं। लगभग बराबर की चार जातियां, जो राज्य के प्रशासन और अन्य मामलों को प्रभावित करने की स्पर्धा में हमेशा बनी रहती हैं और परिणामतः राज्य के राजनीतिक वातावरण में विष घोलती रहती हैं।

ये जातियां हैं इषवा, नायर, ईसाई और मुसलमान। साम्प्रदायिक समस्या के समाधान का कांग्रेसी तरीका ऐसा रहा है, जिसने हमेशा इसको हवा दी है। उनका तरीका साम्प्रदायिक शक्तियों से मोल-भाव का, मोल-भाव करने की ताकत को बढ़ाते रहना था और उनकी क्षुधा को जागृत रखना था। यह यहां तक चला कि कांग्रेस को एक या दूसरे साम्प्रदायिक समूह की दया पर आश्रित रहना पड़ा।

कम्युनिस्ट भी अपने को इन समूहों के प्रभाव से मुक्त नहीं रख पाये। किसी जाति में प्रविष्ट होने के लिए उन्होंने तो साम्प्रदायिक आधार की संस्थाओं को प्रोत्साहित किया। उन्होंने श्री नारायण धर्म परिपालन संघम, नायर सर्विस सोसायटी तथा पुलय महासभा में घुसपैठ करना प्रारम्भ किया। उन्होंने खुले आम मुस्लिम लीग से हाथ मिलाया और उनके अतर्कसंगत और साम्प्रदायिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांगों को भी स्वीकार किया। उन्होंने नम्पूतिरियों की योगक्षेम सभा का निर्माण किया। इस तरह सम्प्रदायवाद से संघर्ष करने के बजाय उन्होंने साम्प्रदायिकता का दुरुपयोग किया। परिणामतः कदाचित कम्युनिज्म का विकास-विस्तार हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु साम्प्रदायिकता अधिक सशक्त रूप से केरल की राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ाने में सफल हो गयी। अगर कांग्रेस ने लीग के साथ १९६० में समझौता किया था, कम्युनिस्टों ने १९६७ में अधिक घातक परिणामों के साथ किया। अगर कांग्रेस ने विशप के माध्यम से गिरजाघरों पर प्रभाव जमाया, तो कम्युनिस्टों ने वही फादर वटक्कन् और उसके कृषक तोषिलाली दल के माध्यम से किया। अगर कांग्रेस ने और शंका के द्वारा एस० एन० डी० पी० की शक्ति प्राप्त की, तो कम्युनिस्ट केशवन् के द्वारा किये गये आन्दोलन के जरिये प्रविष्ट हुये। इस तरह यह साम्प्रदायिक समर्थन प्राप्त करने का मार्ग था न कि उसके विरुद्ध एक सैद्धान्तिक समर का। कोई भी दल सभी जातीय गुटों की एकता बनाने में ईमानदारी से रुचि नहीं रखता।

सशक्त राष्ट्रीयता की आवश्यकता

यदि प्रदेश की राजनीति को इनसे मुक्त रखना है, तो साम्प्रदायिकता को समाप्त करना होगा। वे सब तत्व, जो एकता के विरोध को प्रोत्साहित करते हैं, को हतोत्साहित करना होगा। वास्तव में साम्प्रदायिकता तो निकट भूतकाल की उत्पत्ति है। केरल के ईसाईयों ने अपने को हिन्दुओं से पृथक् पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात समझना प्रारम्भ किया। पुर्तगाली के पादरी जो साम्राज्य के अग्रदूत थे, ने जानबूझकर स्थानीय ईसाईयों के अराष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया चलायी। स्थानीय ईसाइयों ने जो साहसिक प्रतिकार किया वह वास्तव में प्रेरणास्पद है। आज भी केरल के ईसाईयों में एक बड़ा वर्ग विदेशी प्रभाव से मुक्त रहने को कृतसंकल्प है। यदि राजनीतिक दल साम्प्रदायिक भावनाओं का दुरुपयोग वन्द कर दें, तो ईसाई साम्प्रदायिकता एक विगत कथा मात्र रह जायेगी।

केरल में मुसलमान भी पैगम्बर के युग से रहते आये हैं। वे कोषिक्कोटु सामूटिरि की सम्प्रभुता के सर्वोत्कृष्ट रक्षक रहे हैं। धार्मिक आस्थाओं और पूजा की स्वतन्त्रता उन्हें सदैव रही। लेकिन मैसूर में टीपू के आरोहण के काल से धार्मिक सम्बन्ध कड़ुवे होते गये जो युगों से केरल में हिन्दुओं के साथ अच्छे चले आ रहे थे। केरल के मुसलमानों ने कालीकट के सामूतिरि के विरुद्ध हैदर और टीपू से हाथ मिलाने का सोचा। तब से यह विभेद प्रारम्भ हुआ, जो मैसूर आक्रमण के समय बलात धर्मपरिवर्तन, धर्मान्धता जन्य वीभत्स माप्पिला दंगे और लीग द्वारा इन अराष्ट्रीय मांगों आदि के रूप में अब तक चलता चला आ रहा है। दुःख की बात तो यह है कि कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों ने एक-दूसरे से मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति में पराजित करने की स्पर्धा की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजाय इसके कि इन्हें राष्ट्रीयता के श्रेष्ठ मार्ग पर लाने का प्रयास करते। कोई भी दल जो साम्प्रदायिकता की राजनीति का अन्त चाहता है उसे स्पष्ट रूप से कहना पड़ेगा कि उन्हें सबको उपासना की असीम एवं अभिसिप्त स्वतन्त्रता होगी, परन्तु साम्प्रदायिकता के साथ राजनीति का मिलाप सहज नहीं होगा, जिसमें साम्प्रदायिक आधार पर अनापशनाप मांगें हों।

नायर और इषवा के हितों का संघर्ष बहुत उथला है। श्री नारायण गुरू और चट्टम्बि स्वामिकल् के जीवन और उपदेश, जिनमें इन दो जातियों के जीवन की एकता और समरसता निहित है निश्चय ही आने वाली पीढ़ियों को एकात्मक भावना की सशक्त प्रेरणा जागृत करेंगी।

जब उपासना की स्वतन्त्रता और सहिष्णुता की प्राचीन परम्परा पर आधारित राष्ट्रीयता की एक सशक्त और व्यापक धारा व्यवस्थित रूप से प्रवाहित की जायेगी और साम्प्रदायिक आधार पर राजनीति की विभाजक आकांक्षाओं के अभाव में जब हिन्दू, ईसाई और मुसलमान एक साथ रहेंगे, तो निश्चय ही परिस्थितियों में परिवर्तन आयेगा।

आर्थिक समस्याएं और निस्तार के मार्ग

केरल की गरीबी की कुछ अलग प्रकार की विशेषताएं हैं। केरल भारत का सबसे छोटा प्रदेश है, पर आबादी का घनत्व सर्वाधिक है। यहां खाद्य का अभाव बड़ा पुराना और दुःसाध्य है। अपनी आवश्यकता का ५० प्रतिशत खाद्यन्न उसे बाहर से मांगाना पड़ता है। यद्यपि शिक्षा का प्रसार सर्वाधिक है, परन्तु औद्योगीकरण की गति बहुत धीमी है। परिणामतः शिक्षित बेकारों की संख्या बहुत अधिक है। औद्योगिक रोजगारों के अभाव में खेती पर भार बढ़ता रहा है, जिससे खेती टुकड़ों में बंटती गयी है, जिसका अन्तिम परिणाम उपज की ओर कमी में होता है। इस तरह प्रति व्यक्ति आय बहुत निम्न है। कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों इस दिशा में समस्या की सन्तोषजनक सफलता की दिशा में कुछ भी नहीं कर सके। आबादी को कृत्रिम साधनों से रोकने के प्रयास ने केरल की आबादी का जातीय सन्तुलन बिगाड़ा है। परिणामतः हिन्दुओं की संख्या घटी है और दूसरों की संख्या बढ़ी है। इससे लगे हुए जो भी राजनीतिक परिणाम हो सकते हैं वे भी हुए हैं।

औद्योगीकरण की दिशा में बहुत ही कम विकास हुआ। केरल के जीवन की पद्धति कुछ ऐसी है कि गांव-गांव में फैले हुए लघु एवं मध्यम आकार के उद्योग ही बेकारी की समस्या का समाधान कर सकते हैं। केरल के सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का स्वरूप कृषि और उद्योग की मिश्रित व्यवस्था होनी चाहिए। विभिन्न प्रकार का कृषि उत्पादन जो कच्चे माल की तरह काम आ सकता है, विशेष रूप से लकड़ी तथा पहाड़ी उत्पादन, अनेक खनिज आदि को देखते हुए उद्योगों की बहुत गुंजायश है।

स्थानीय साधन के उत्खनन को छोड़कर बाह्य पूंजी की बाट जोहने तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्र को भरपूर सहायता न देने का दोष देकर भला-बुरा कहने की नीति पर बहुत चला जा चुका है। लोगों को यह अच्छी तरह समझा दिया गया कि बड़े पैमाने के भारी उद्योग, जो केन्द्र द्वारा संचालित हों वे ही राज्य का औद्योगीकरण कर सकते हैं। जिन दलों ने केन्द्र पर केरल को उपेक्षित छोड़ देने के आरोप लगाने की नीति को अपनाया उन्हें इसके अच्छे लाभांश भी मिले, परन्तु इससे समस्या का समाधान नहीं हुआ। इसके अलावा कम्युनिस्टों की श्रमनीति विशेषरूप से घेराव आदि के खुला और अधिकाधिक समर्थन ने न केवल बाह्य पूंजी को केरल के लिए शर्मीली बना दिया, बल्कि प्रदेश के उद्योगों का निर्गमन होने लगा। इस स्थिति के मुकाबले के लिए कांग्रेस के पास कोई दूरगामी स्थायी नीति नहीं थी। खाद्यान्न क्षेत्र की कृत्रिम व्यवस्था ने काला बाजार, स्मगलिंग तथा मूल्यवृद्धि में वृद्धि की। उद्योगों के मामले में भी उन्होंने केरल के लिए कोई विशेष योजना नहीं बनायी। परिणामतः केरल की समस्याएं, जो समाप्त हो सकती थीं लगातार केरल को परेशान करती रहीं।

लगता है कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों इस तथ्य से प्रमुदित होते हैं कि समस्या अभी ज्यों की त्यों बनी है, क्योंकि तब कांग्रेस कम्युनिस्टों को और कम्युनिस्ट कांग्रेस को दोष दे सकने की स्थिति में होते हैं। हरेक लोगों की समस्या का, जन-जन की व्यथा का दुरुपयोग अपने दलीय लाभ के लिए करना चाहता है।

केरल का औद्योगीकरण विकेन्द्रित लघु उद्योगों के जाल के ढांचे में होना चाहिए था। कम्युनिस्ट इस चिन्तन दिशा के लिए बिल्कुल प्रतिकूल हैं। ऐसा लगता है, कांग्रेस तो लोगों की यह धारणा बना देना चाहती है कि वह वास्तविकतावादी है। छोटे उद्योग जब फैलेंगे गांवों तक जायेंगे। इस तरह इस क्षेत्र की बेकारी के लिए एक समाधान मिलेगा, युवक के ग्राम से शहर की ओर हो रहे पलायन को रोकेगा और ग्राम-स्तर पर पूंजी निर्माण में सहयोग देगा। केवल यही केरल के औद्योगीकरण का ढांचा हो सकता है।

फिर आबादी के घनत्व से छुटकारा पाने के लिए हमें लोगों को दूसरे प्रदेशों में जहां आबादी का घनत्व बहुत कम है जाकर रहने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। इसके लिए सहानुभूतिजनक और बेहतर सम्बन्धों का निर्माण आवश्यक होगा। इसी प्रकार केरल की खाद्यान्न की आवश्यकता राज्यों से निरन्तर बिना रोक-टोक के अनाज आने देने की व्यवस्था के बिना पूरी की ही नहीं जा सकती। नकदी फसल को खाद्यान्न फसल की भूमि में बदलना न केवल एक बुरी अर्थव्यवस्था होगी वरन् हानिकारक होगी, क्योंकि हर राज्य के हर मामले में आत्मनिर्भर होने की प्रक्रिया अन्ततः राष्ट्रीय एकता के लिए अहितकर रहेगी। एकात्मक शासन के विचारों को कारगर बनाना और साधनों और साध्यों को अपनी सम्पूर्णता के परिप्रेक्ष्य में देखना आदि ही किसी अर्थपूर्ण राष्ट्रीय एकात्मता के किनारे तक पहुंचा सकता है और भारत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सक्षम बना सकता है। न तो कांग्रेस द्वारा किया गया देश को इतने सारे कृत्रिम विभागीकरण बांटना और न कम्युनिस्टों द्वारा अभिक्षित देश का बहुत सारे राष्ट्रों के रूप में विखण्डीकरण ही हितावह रहेगा। ये दोनों मार्ग देश की एकता पर आघात पहुंचायेंगे और वर्तमान असन्तोष की आग को भड़कायेंगे।

विकेन्द्रित और मशीनीकृत लघु उद्योगों के व्यापक फैलाव का जनसंघ का आर्थिक तरीका केरल के लिए विशेषरूप से उपादेय होगा। यह केरल के लोगों के व्यक्तिवादी संस्कारों के भी अनुकूल होगा। उच्चस्तर की शिक्षा प्रसार के कारण यह बहुत ही व्यावहारिक भीहै। इस दिशा में यदि जबरदस्त अभियान ईमानदारी से चलाया जाय, तो केरल की गतिशून्य औद्योगिक अवस्था में आमूलचूल परिवर्तन हो सकेगा। इसी के साथ जनसंघ की एकात्मक पद्धति के शासन की बात को जोड़ लिया जाय, हर भाग के लोगों का शेष भाग से सम्बन्ध स्थापित किया जाय, तो आज की तनावपूर्ण स्थितियां समाप्त होती जायेंगी। जनसंख्या के घनत्व का दबाव कुछ घटेगा और खाद्यान्न के स्वतंत्र व्यापार से राज्य की खाद्यान्न स्थिति भी सुधरेगी। इस तरह यह स्पष्ट है कि जनसंघ कांग्रेस और कम्युनिस्टों के स्पष्ट और व्यावहारिक विकल्प के रूप में आया है।

जनसंघ केरल की जनता की दृष्टि पथ को पकड़ने के पक्के संकल्प के साथ कार्य कर अपने लिए केरल के राजनीतिक नक्शे में स्थान निर्माण करने का निरत प्रयास करता रहा है। यद्यपि प्रगति अनवरत रही है, फिर भी मानना पड़ेगा कि धीमी रही है। इसे एक साथ दो अच्छी तरह से पैंतरा साधे दलों से राजनीतिक संघर्ष करना है। केरल के चुनावों में, जो थोड़े-थोड़े से कालान्तर के बाद बराबर होते रहे हैं, केरल राज्य स्वयं को राजनीतिक शक्तियों के उग्र ध्रुवीकरण की पकड़ में आबद्ध पाता है। कभी यह कांग्रेस और कांग्रेस विरोधी और कभी कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट विरोधी खेमे में विभक्त होता है। ऐसे उग्र ध्रुवीकरण में छोटे दलों के लिए मत खींच पाना असम्भव बना देता है। इसलिए जनसंघ के प्राप्त तुलनात्मक दृष्टि से कम मत वास्तविक जन समर्थन और जन सहानुभूति को प्रकट नहीं करते हैं।

कालीकट के ऐतिहासिक अधिवेशन के बाद तो जनसंघ लोकमानस को अच्छी तरह अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। कासरगाडे और पालकाट में मिली जबरदस्त सफलता ने, जहां जनसंघ सबसे बड़ा दल निर्वाचित हुआ, यह सिद्ध करता है कि केरल की जनता ने जनसंघ को सत्ता के गम्भीर स्पर्धी के रूप में समझना प्रारम्भ कर दिया है। वह दिन दूर नहीं जब जनसंघ केरल की राजनीति में एक महत्वपूर्ण शक्ति बन जायेगा। अनेक तथ्य आज इस बात को प्रदर्शित करते हैं। एक वैकल्पिक नेतृत्व और वैकल्पिक कार्यक्रम के साथ जनसंघ का प्रजातांत्रिक विकल्प के रूप में प्रकट होना सुनिश्चित है। ० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की प्रतिरक्षा नीति

● मेजर रणजीत सिंह
संसद सदस्य

देश की प्रतिरक्षा गम्भीर संकटावस्था से गुजर रही है और एक राजनीतिक दलदल में फंस गयी है, जिसका उत्तरदायित्व पूर्णरूप से कांग्रेस सरकार पर है। यह हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा है कि नेताओं ने स्वतन्त्रता के समय से ही प्रतिरक्षा के प्रति उदासीनता दिखायी है। स्वतन्त्रता संघर्ष के दिनों में वह हर उस बात का विरोध करते रहे जिसका सम्बन्ध शौर्य से था और अहिंसा के नारे से प्रभावित होकर वह सैनिक विषयों के प्रति इतने उदासीन रहे कि वह अपने उन बच्चों को भी डांटने लगे जो नकली सैनिक सामान से खेलते थे। स्वतन्त्रता के बाद यही सेना विरोधी नेता मन्त्री बने और उन्हें ही उस स्वतन्त्र राष्ट्र की प्रतिरक्षा नीति निर्धारित करने को कहा गया, जो रातोंरात विश्व के संघर्षरत राष्ट्रों का नेता बन गया था। उनमें से कुछ ने तो यह सुझाव दिया कि सेना को समाप्त कर दिया जाय ताकि विश्व शान्ति स्थापित करने के लिए बिना डंक के रहने का दृष्टांत उपस्थित किया जा सके।

रक्षा क्या है ?

प्रतिरक्षा सरकार का वह कार्य है जिसके द्वारा वह विदेशी आक्रमण का प्रतिरोध और आन्तरिक संकट का सामना कर सकती है। इसलिए प्रतिरक्षा के दो भाग हैं—आन्तरिक और सीमा प्रतिरक्षा।

प्रतिरक्षा सेनाओं के उद्देश्य के दो पहलू होते हैं। पहला, देश की सीमाओं का अतिक्रमण करने वाले शत्रु को रोकना और यदि वह फिर से आक्रमण करने की योजना बना रहा हो, तो उसे नष्ट करना। इसलिए सैनिक शक्तियों का उद्देश्य तभी सफल है जब उनमें किसी सम्भावित शत्रु को नष्ट करने की क्षमता हो। कहा जाता है कि 'आक्रमण ही बचाव का सबसे अच्छा रूप है।' मगर, वास्तव में आक्रमण बचाव का एकमात्र रूप है। जो देश युद्ध के आरम्भ में ही आक्रमण करने के लिए प्रस्तुत हो वही शत्रु को नष्ट करने की स्थिति में होता है और यदि किसी कारणवश किसी ने आक्रमण भी किया तो उस शत्रु को पीछे खदेड़ने का सामर्थ्य भी उसी देश में होगा। शत्रु के आक्रमण के बाद प्रतिरोधी सेना खड़ी करना वास्तविक बचाव नहीं है। उदाहरण के लिए जापान यह जानता था कि अमेरिका उससे कहीं अधिक शक्तिशाली सेना बना सकने की स्थिति में था, मगर संयुक्त राज्य अमेरिका तत्काल प्रतिरोधात्मक आक्रमण करके जापानी आक्रमण को रोकने के लिए प्रस्तुत नहीं था। सारा प्रशांत महासागर अरक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा था और उसकी नौसेना व्यर्थ एक स्थान पर इकट्ठी थी। इसलिए जापान को इसका लाभ उठाने का लोभ हुआ। यही बात ब्रिटेन के सम्बन्ध में थी, जो लम्बे युद्ध में डटा रह सकता था, मगर तुरन्त जर्मनी पर प्रत्याक्रमण की स्थिति में नहीं था। आज भी यदि तीसरा महायुद्ध रोका जा रहा है तो केवल इसलिए कि आशंकित शत्रुओं के पास पर्याप्त प्रतिरोधात्मक शक्ति है। इसलिए हर प्रतिरक्षा शक्ति का उद्देश्य प्रतिरोध तथा नष्ट करने की क्षमता पैदा करना है। इस सिलसिले में विश्व के एक ऐसे महान् नेता, जो महान् सैनिक भी सिद्ध हुए, का कथन देखें 'युद्ध के लिए तैयार रहना शांति की रक्षा करने का सबसे प्रभावशाली साधन है।' (जार्ज वाशिंगटन का अमेरिकी संसद के सामने पहला वार्षिक भाषण)।

भारत ने इस सिद्धान्त का पालन नहीं किया। स्वतन्त्रता मिलते ही हमने पहला काम यह किया कि हमने सेना का आकार उस मात्रा तक घटाया कि वह पाकिस्तान के साथ हमारी सीमा की प्रतिरक्षा तक के लिए अपर्याप्त रही। हमने चाणक्य द्वारा प्रतिपादित सरकार के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया। उनके अनुसार (१) **कभी अपने पड़ोसी पर विश्वास न करो, मगर यह भाव उस पर प्रकट न होने दो (२) तुम्हारा पड़ोसी सदा तुम्हारा शत्रु होगा और उसका अगला पड़ोसी तुम्हारा मित्र।** हीगेल ने भी कहा था, 'दूसरा राज्य सदा तुम्हारा शत्रु है।' तात्पर्य यह कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में मित्रता को अटूट नही मानना चाहिए। हमें दूसरे देश की शक्ति से अपने देश की शक्ति को गिरने नहीं देना चाहिए।

इस पूर्व विचारित नीति का उदाहरण पहले महायुद्ध के बाद अमेरिका में मिलता है। उस समय ब्रिटेन के पास सबसे बड़ी नौसेना थी। जापान शीघ्रता से उसके निकट पहुंच रहा था। इसलिए अमेरिका ने तुरंत खतरे को महसूस करते हुए न केवल जापान, अपितु ब्रिटेन के सम्भावित आक्रमण को परास्त करने की योजनाओं पर काम करना आरम्भ किया। जहां जापान के सम्बन्ध में प्रतिरोधात्मक कार्रवाई का नाम 'केसरी योजना' था तो इस प्रकार इंगलैण्ड विरोधी योजना को 'लाल योजना' कहते थे, यद्यपि ब्रिटेन और अमेरिका गहरे मित्र थे। इसी योजना के अभाव के कारण भारत अपनी सीमाओं को सुरक्षित नहीं रख सका।

सुदृढ़ प्रतिरक्षा की आवश्यकताएं

सरकार की सही और चतुर्दिक नीति का जोड़ सुदृढ़ प्रतिरक्षा है, जो संक्षेप में इस प्रकार हो सकती है :—

(क) **स्वस्थ विदेश नीति** द्वारा हमें यह देखना चाहिए कि हमारा देश अन्य पड़ोसी देशों से अधिक शक्तिशाली हो, केवल सैनिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु राजनीतिक रूप में भी, ताकि हमें विश्व-मत का समर्थन मिले और बड़ी शक्तियों की मित्रता प्राप्त हो। इस नीति में राजनय के अन्य सुविख्यात साधन भी शामिल हैं।

(ख) **दृढ़ आर्थिक आधार** – समुद्रगुप्त ने कहा था कि 'प्रतिरक्षा पर जितना धन बचाया जाता है वह व्यय करने की अपेक्षा देश के लिए अधिक आर्थिक विनाश का कारण बन जाता है। उन्होंने बताया है कि युद्ध पर बहुत व्यय होता है, मगर उससे राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय जीवन में सामान्य सुधार की उपलब्धियां व्यय से कहीं अधिक लाभ देती हैं।

आधुनिक युद्ध के लिए तैयारियों से अनेक लाभ हैं, जैसे औद्योगिक 'चक्र' चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

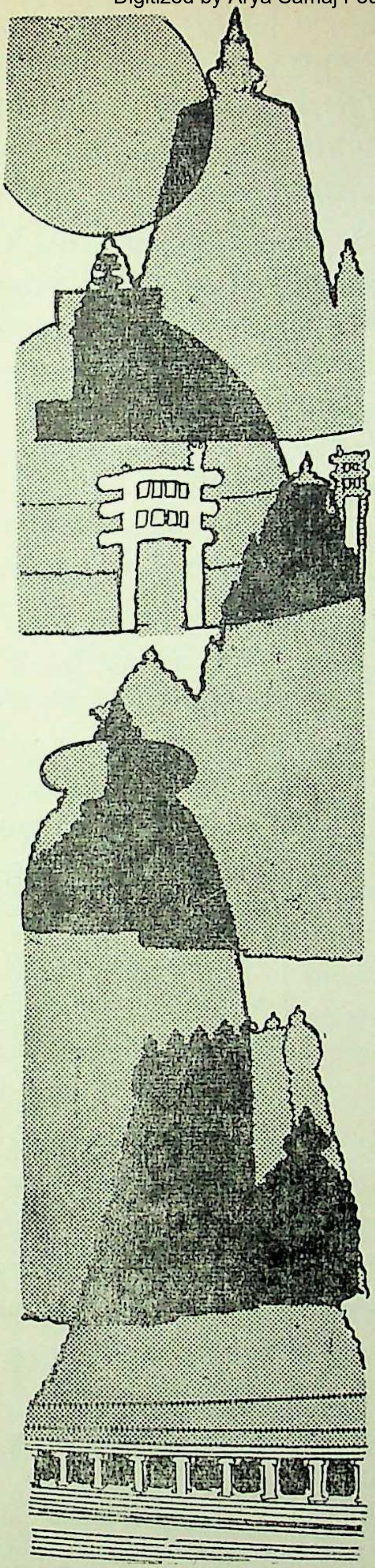

जाता है, [illegible] की क्रान्ति और राष्ट्रीय एकता पैदा होती है। मगर वास्तविक युद्ध के कार्य का व्यय नितांत अपव्यय ही है। भारत इस समय इतना विकसित नहीं हो पाया है कि वह पाकिस्तान के साथ एक साल से अधिक और चीन से ६ मास से अधिक युद्धरत रह सके । निम्नलिखित आंकड़े इस बात को स्पष्ट करेंगे :—

१० सितंबर, १९६५ को बर्की के मोर्चे पर केवल ३५ मिनट तक तोपों के युद्ध में भारत ने २ लाख रुपये खर्च किये। 'डोगराई' क्षेत्र में एक-एक तोप ने प्रतिदिन दस हजार रुपये का गोला-बारूद, बम फेंका। युद्ध में इस प्रकार की एक हजार तोपें चल रही थीं। इसके अतिरिक्त ६०० टैंक भी थे। तोपखाना ही केवल प्रति मिनट बीस हजार रुपये का गोला-बारूद जलाता था और तेल का खर्चा प्रतिदिन ३० लाख रुपये था। कुल युद्ध पर दैनिक व्यय १० करोड़ रुपये से भी अधिक बैठता था। शत्रु की कार्रवाई से प्रायः इतने ही रुपये की हानि होती थी। अगर हमें पाकिस्तान और चीन का या केवल चीन का पूरे युद्ध में सामना करना पड़े, तो उसमें २००० तोपों, १००० टैंकों और १००० यानों के कार्य पर प्रतिदिन २५ करोड़ के क़रीब खर्चा बैठेगा। शत्रु की कार्रवाई से भी प्रायः इतनी ही हानि होगी। इसलिए युद्ध को हर प्रकार से टालना चाहिए। इस दिशा में हमें व्यक्तिगत मतों और आवेगों पर न चलकर अनुभवी लोगों—चीन के सुन त्सू, चाणक्य, भीष्म, कृष्ण, क्लाइव, विज नेपोलियन, वोरोशिलोव, चर्चिल और मोंटोगोमरी के अनुभव पर ध्यान देना चाहिए।

औद्योगिक आधार

हमारे पास शस्त्रों की कमी है। युद्ध के दिनों हमारे तोपखाने के लिए कुछ प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारूद की कमी महसूस हुई। हमारे पास टैंक विरोधी बंदूकों की भी पर्याप्त संख्या नहीं थी। १९६२ में भी इसी प्रकार के अभाव को महसूस किया गया था और परिणामस्वरूप तत्कालीन प्रतिरक्षा उत्पादन सचिव श्री स्वामीनाथन के नेतृत्व में इस बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए एक सर्वेक्षण कराया कि असैनिक उत्पादक कहां तक युद्धकाल में सैनिक सामान का उत्पादन कर सकते हैं। सर्वेक्षण के अनुसार युद्धकाल में प्रयुक्त अनेक वस्तुएं आसानी से असैनिक कारखानों में तैयार की जा सकती हैं। जैसे २५ पौण्ड तोप के बारूद में गोला और पीतल के खोल होते हैं। यह खोल केवल एक साधारण-सी नली होती है जो इसी प्रकार की नलियां बनाने वाले कारखाने बना सकते हैं। इसी प्रकार का अन्य सामान भी असैनिक उत्पादक बना सकते हैं, किन्तु इस पर भी सरकार ने असैनिक उत्पादकों से कोई सैनिक सामग्री बनाने को नहीं कहा है। असैनिक उद्योगों को इस प्रकार संघठित करके कि वह सैनिक कार्य भी कर सकें, हम अपने उद्योग तथा सुरक्षा दोनों को लाभ पहुंचा सकेंगे। इस प्रकार का प्रबन्ध हर बड़े देश में होता है।

राष्ट्रीय चरित्र

राष्ट्रीय चरित्र के पतन का प्रभाव प्रतिरक्षा सेनाओं पर पड़ना जरूरी है, क्योंकि आखिर सैनिक तो सामान्य नागरिकों में से ही आते हैं। जनलेखा समिति के प्रतिवेदनों से स्पष्ट है कि आज सेना में पहले से कहीं अधिक भ्रष्टाचार है।

युद्ध में जनशक्ति की हानि कल्पनातीत हो सकती है। पिछले युद्ध में जर्मनी के प्रायः ३००० व्यक्ति प्रतिदिन नष्ट हो जाते थे, रूस को इससे भी अधिक जन हानि उठानी पड़ी। हमें कम से कम एक हजार नौजवान प्रतिदिन भरती करने की आवश्यकता होगी। १९६२ में हजारों नौजवानों ने सेना के लिए अपनी सेवाएं देनी चाहीं, मगर यह चिन्ताजनक तथ्य प्रकट हुआ कि उनमें से ८० प्रतिशत जवान सेना के अयोग्य थे। हमारे देश के जवानों में अधिसंख्य सामान्य स्वास्थ्य मान पर भी खरे नहीं उतरते। इसी प्रकार केवल २५ प्रतिशत ही निश्चित बौद्धिक स्तर के पाये गये।

नागरिक उत्साह

हमारे देश के जवान शरीर से कमजोर भले ही हों, मगर वह कभी युद्ध से घबराये नहीं हैं। उनकी मनःस्थिति सदा दृढ़ रही। इसका लाभ उठाया जाना चाहिए था। हमने केवल यही नहीं किया, अपितु जनता के उत्साह को धक्का दिया। हमने १९६२ में नेफा में कुछ लड़ाइयां हारी, मगर हमारे समाचारपत्रों और मंत्रियों ने इस प्रकार बोलना आरंभ किया जैसे सब नष्ट हो गया है। प्रधानमंत्री ने रेडियो भाषण में कहा कि "मेरा हृदय असम की जनता की ओर जा रहा है"। जैसे यह केवल असम का ही युद्ध था। इसी प्रकार के अवसर पर चर्चिल ने कहा था, "हम सागर पर लड़ेंगे, हम तटों पर लोहा लेंगे, हम खेतों और मोर्चों पर युद्ध करेंगे, हम सड़कों पर संघर्ष करेंगे" और ईश्वर की इच्छा से इंगलैण्ड शत्रु के हाथ पड़ जाता है, तो हमें इस युद्ध का कनाडा से अपने सागर पार साम्राज्य में सफल परिणाम तक ले जायेंगे। हम कभी भी समर्पण नही करेंगे। काश, हमारे प्रधानमंत्री ने कुछ ऐसे ही शब्दों में जनता का हौसला बढ़ाया होता।

विदेशों में सैनिक पराजयों को गरिमाशाली संघर्ष का नाम दिया गया है। मगर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि यहां पराजय के समाचारों को तो खुशियों में पेश किया गया, जबकि विजय को उदासीनता से देखा गया। बोम्दिला और सेला के बारे में तो बहुत कुछ कहा गया, मगर किसी ने वालोंग में भारतीय ब्रिगेड के चीनी डिवीजन के साथ वीरतापूर्ण संघर्ष की ओर ध्यान नहीं दिया।

युद्ध की विशेषता

युद्ध प्रतिरक्षात्मक हो सकता है या आक्रामक। यद्यपि भारत जैसा शांतिप्रिय देश कभी भी राजनीतिक उद्देश्यों के लिए आक्रमण नहीं करेगा, यह स्पष्ट है कि जब हमारी सीमाओं का अतिक्रमण हो जाता है, तो हमें आक्रामक युद्ध भी लड़ना होगा ?

चीनी और बाद में पाक आक्रमण से हमारे सबसे आशावादी विश्व शान्ति स्वप्न-द्रष्टाओं को भी यह स्पष्ट हो गया कि नाखूनों और डंकों के बिना रहना कितना खतरनाक है। इसलिए अपने नाखूनों और डंकों को प्रखर और तीव्र करने से पहले हमारे पास इस प्रकार का नेतृत्व चाहिए जो यह जानता हो कि यह प्रखरता और तीव्रता कैसे आये ? कोई भी विदेश नीति सुदृढ़ प्रतिरक्षा पद्धति के आधार के बिना प्रभावहीन है। १९६२ में जब हमारी सैनिक कमजोरी विश्व पर प्रकट हो गयी तो, विश्व में हमारे सम्मान में भी गिरावट आने लगी।

हमारी नौकरशाही के कुछ अधिकारियों ने हमारी प्रतिरक्षा को जिस स्थिति में डाल दिया है वह अपमानजनक है। नौकरशाही पर निर्भर रहने वाले मंत्रियों का रहना बुरा है, मगर नौकरशाही ने जिस ढंग से देश को अपमानित किया है वह महान अपराध है।

हमारी दुर्बल सरकार और ईमानदारी रहित मंत्रियों ने हमें रूसी शस्त्रों के बदले बेचने से हमारी सेनाओं को पंगु बना दिया है। उदाहरण लीजिए :—

१९६५ में सोवियत संघ ने हमें खुले बाजार— फ्रांस, इटली, यूगोस्लाविया और स्वीडन— से शस्त्रास्त्र खरीदने से रोक कर रुपये के भुगतान के आधार पर शस्त्र देने का प्रस्ताव रखा। हमारे नौकरशाही अधिकारी जाल में फंस गये। रूस ने हमें १३० मि० मि० तोपें दीं, मगर उनमें से बहुतों के साथ कुछ आवश्यक पुर्जे नहीं थे, साथ ही रूस के आदेश पर भारत सरकार ने इनके लिए स्वयं गोला-बारूद बनाने की घोषणा भी छोड़ दी, क्योंकि रूसियों ने आवश्यकतानुसार गोला-बारूद देने का वचन दिया था। यही बात रूसी टैंक पी टी-७६ के बारे में भी हुई। अनेक मिग यान तो पहले पुर्जों के अभाव में अपने हवाई अड्डों से ऊपर उठ ही नहीं सके। अब हमारे पास कई सौ रूसी टैंक टी-५६, टी-५५ और पी टी-७६, बहुत सी १३० मि० मि० तोपें और मिग यान हैं। मगर उनको कार्य में लगाने के लिए हमें "माता रूस" पर निर्भर रहना पड़ेगा, जिसका अनुभव १९६५ के युद्ध में ही हो गया था जबकि हम मिग का उपयोग ही नहीं कर पाये। शीघ्र ही हमारी प्रतिरक्षा सेना के पास केवल ऐसी तोपें होंगी, जो गोले न फेंक सकें, टैंक होंगे, जो हिल भी न सकें और यान होंगे जो उड़ न सकें।

जनसंघ नेतृत्व करे

हमारी प्रतिरक्षा सेनाएं अन्य क्षेत्रों में भी शोचनीय स्थिति में हैं। अंग्रेजों द्वारा दिये गये संघटन को ही हम आज तक चलाते आ रहे हैं। अफसरों और जवानों के बीच जूनियर कमीशन्ड अफसर के रूप में अब भी दीवार खड़ी है। अफसर पश्चिमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्ज के क्लबों में नृत्य और नशे में लगा रहता है और आशा करता है कि सिपाही उसके दरवान के रूप में वर्फानी रातों में गुलामी करता रहे। सिपाही को अव इससे असंतोष है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि नेताजी जैसे भारतीय सिपाही द्वारा स्थापित भारतीय राष्ट्रीय सेना को हमने अपनी सैन्य शक्ति का केन्द्र नहीं बनाया। हमें अपनी सेना को सच्ची सैनिक और भारतीय परम्परा में पुनर्गठित करना चाहिए जिसका प्रतिनिधित्व गुरु गोविन्द सिंह, महाराणा प्रताप, शिवाजी और नेताजी करते थे। राजनीतिक दल के रूप में केवल जनसंघ के पास ही स्पष्ट प्रतिरक्षा नीति और भावना है।

अधिक संख्या, अच्छी दक्षता

हमारे पास २१ डिवीजन सेना है। हमें ६ डिवीजन हर समय उत्तरी सीमाओं पर चीन के खतरे के कारण रखने पड़ेंगे। एक डिवीजन नागा विद्रोहियों के विरुद्ध लगा हुआ है। कम से कम दो डिवीजन महत्वपूर्ण सैनिक आवश्यकताओं के लिए सुरक्षित रखने पड़ेंगे। दो सैनिक यातायात और प्रदाय की सुरक्षा के लिए लगे रहेंगे। शेष ८ डिवीजन वच जाते हैं जबकि पाकिस्तान के पास तेरह हैं। क्या यह स्थिति भारत को मान्य है? हम दोनों आक्रमणकारियों के विरुद्ध एक मास से अधिक समय तक नहीं टिक पायेंगे। अतः हमें कम से कम २०० डिवीजन सेना चाहिए भले ही उसमें ७० केवल छापामार ही हों। एक विशाल सेना राष्ट्र पर भार वनकर नहीं रहेगी, यदि हम उसे युद्ध और शान्ति दोनों अवस्थाओं के लिए प्रशिक्षित करें। हम इस्राइल के "नखालों" की भांति सेना को शान्तिकाल में राष्ट्रीय विकास कार्य में काम करना सिखायें। हम यह न कहें कि जवान या तो वंदूक चला सकेगा या हल। मैंने इस्राइलियों को वंदूक के साथ-साथ हल चलाते देखा है। चीनी सेना अपनी सड़कें स्वयं वनाती है। हमारे सैनिक इंजीनियर पुलों के साथ-साथ बांध भी वना सकते हैं।

अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण

शत्रुओं की विशाल सेनाओं का सामना करने के लिए हमारे लिए अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है। १८ से ४५ तक की आयु वाले लोगों और हाईस्कूल छोड़ने के वाद हर छात्र को यह प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इससे युवकों में नियमबद्धता और अनुशासन की भावना भी पैदा होगी और वह प्रशिक्षण की अवधि में राष्ट्रीय योजनाओं में भी काम करेंगे। हर नागरिक गणवेश रहित सैनिक है। हम विभिन्न प्रतिरक्षा प्रशिक्षण याजनाओं—होम गार्ड, नेशनल स्पोर्ट्स स्कीम, नागरिक राइफल प्रशिक्षण, प्रान्तीय रक्षा दल, केन्द्रीय और प्रादेशिक क्षेत्रीय सेना—की केन्द्रीयकरण के वाद एक वास्तविक राष्ट्रीय सुरक्षित सेना का विकास करें।

हमारे निद्रामग्न नेताओं को वास्तविक पृथ्वी पर आकर तथ्यों को आंखें खोलकर देखना चाहिए। हमें हर प्रकार से शान्ति का प्रयास करना चाहिए, मगर ईश्वर के लिए हम अपने शस्त्रों पर जंग न चढ़ने दें।

इन्हीं नेताओं ने हमारी सेनाओं को स्वचालित बंदूकों से वंचित रखा और शत्रु की विजय में सहायता दी। अब यही उसे परमाणु बम से वंचित रखना चाहते हैं। वह कभी यह समझ पायेंगे कि बम शस्त्रों के विकास—वाण से प्रक्षेपणास्त्र तक—की एक कड़ी है। इतिहास गलती दोहराने वालों को भयानक दंड देता है। हमें वास्तविकताओं को नहीं भूलना चाहिए। ○ ○

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्प्रदायिकता
समस्या
समाधान

बलराज मधोक
संसद सदस्य

प्रत्येक देश में सदैव एकता एवं विभाजक शक्तियां व तत्व साथ-साथ रहे हैं। इन्हीं दोनों के आधार पर उस देश की एकता एवं फूट निर्भर करती है। यदि एकता की शक्ति व तत्वों को ठीक से आंक कर उन पर उचित आग्रह किया जाय और उनके प्रति समुचित दृष्टि-कोण अपनाया जाय, तो विभाजक शक्ति से अधिक जन-मानस पर उनका प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में यही एकता की भावना को विभाजक शक्तियों से प्रमुखता देना और छोटे-छोटे सम्प्रदायों, वर्गों, पन्थ व राज-नीतिक सम्प्रदायों के प्रति व्यक्ति की निष्ठाओं से अधिक समग्र राष्ट्र के प्रति निष्ठा को प्राथमिकता देना ही राष्ट्रीयता कहलाती है। आज-कल इसी राष्ट्रवाद को प्रमुख व प्रभावशाली रूप में जाना जाता है और इसे ही सम्पूर्ण राष्ट्र की एक नवशक्ति का परिचायक माना जाता है।

भारत एक अत्यन्त प्राचीन एवं विस्तृत देश है। यही कारण है कि यहां विभिन्नता तथा विविधताओं के दर्शन होते हैं। जलवायु व बनावट की दृष्टि से यह समग्र विश्व से भिन्न है। उत्तरी ध्रुव प्रदेश से लेकर विषवत् रेखीय प्रदेश तक की समस्त विभिन्न प्रकार की जलवायु यहां विद्यमान है। मिट्टी व उसकी रचना के प्रसंग में है - ऊंचे-ऊंचे हिमा-लय पर्वत, गंगा, ब्रह्मपुत्र व सिन्धु नदियों द्वारा निर्मित मैदान, चौरस मैदान, लम्बे समुद्र, तटीय मैदान तथा हृदय मनोहारी शिखरावलियां एवं पर्वत मालाएं आदि मिल कर संपूर्ण भारतीय प्रदेश को अत्यन्त मनो-हर एवं चित्ताकर्षक सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

मिट्टी, जलवायु, वर्षा, बनावट की विविधता तथा अन्य प्राकृतिक परिवेश ने सहज रूप में सभी प्रदेश के निवासियों की वेश-भूषा, भोजन की आदतें और जीवन निर्वाह की पद्धतियों पर भिन्न-भिन्न रूप में प्रभाव डाला है, जिससे भिन्न-भिन्न प्रदेश के भूभाग पहिचाने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत दीर्घकाल से ही विचारों एवं आत्मा की स्वतंत्रता स्थिर रखने वाला देश है। भारतीय विचारों को प्रस्फुटित करने वाली अत्यन्त प्राचीन ऋग्वेद की पुस्तक ने दर्शन एवं सांस्कृतिक रूप में विश्वनियन्ता ईश्वर का विचार प्रकट किया और सम्पूर्ण विश्व को एकेश्वर की शिक्षा प्रदान की, जिसे विद्वान भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते हैं। 'स: एको सद्विप्रा: बहुनां वदन्ति।' यह पवित्र विचार ईसाई व इस्लाम पन्थ की ईश्वरीय मान्यताओं से विल्कुल भिन्न है। इस्लाम अनुयाइयों का ईश्वर एक है, लेकिन उसका प्रवर्तक बन्दा मुहम्मद है। ईसाइयों के एक ईश्वर का एक ही बेटा है और वह है ईसा मसीह। इस्लाम व ईसाई मत के अनुसार एक व्यक्ति को एक ईश्वर तथा उसका विशिष्ट भविष्य-वक्ता व विशिष्टपुत्र दोनों की भक्ति ईश्वरीय दया प्राप्त करने के लिए करनी चाहिए जबकि वेद के अनुसार प्राचीन काल से भारतीय समाज एक ही ईश्वर मानता चला आ रहा है, परंतु उसका कोई विशेष भविष्य वक्ता कहलाने वाला पुत्र नहीं माना। वह सबका पिता है, उसे उसी पद्धतियों से पूजा जाता है जिस नाम से वह पुकारा जाता है। इसी वेद-कालीन चिंतन को लम्बे इतिहास में वैचारिक स्वतन्त्रता का वास्तविक आधार माना। भारतीय संस्कृति के यही विशिष्ट लक्षण हैं, जिसने दीर्घ काल से भारतीय जीवन पद्धति को संचालित किया है। यही कारण है कि भारत कभी किसी विशेष मजहबी व राजनीतिक रूप से बंधा नहीं रहा।

सभी पन्थों का सम्मान

मनु और चाणक्य जैसे राजनीतिक शास्त्रविद तथा विधि निर्माताओं ने भारतीय शासकों को उन्हें अपने ही उस धर्म का, जिसे राजधर्म कहते हैं पालन करने के लिए प्रेरित किया तथा वे यह भी देखे कि उनकी प्रजा को भी अपने-अपने धर्मों का निर्वाह करने में किसी प्रकार की बाधा या कठिनाई तो उपस्थित नहीं हो रही। इसी से स्पष्ट हो जाता है अनहिलबाड़ा के राजा ने पारसीयों को उस समय शरण दी जबकि इस्लाम ने सम्पूर्ण ईरान को अपने अधिकार में ले लिया और उस समय उन पारसीयों को अपने धर्म की पूजा करने की स्वतन्त्रता भी प्रदान की गई। यही व्यवहार भारतीय शासकों ने सीरिया के ईसाइयों के साथ उस समय निभाया और जब प्रथम बार यहूदी व मुसलमान व्यापारी या शरणार्थी रूप में आये। छत्रपति शिवाजी और महाराजा रणजीत सिंह के काल में भी इस्लामी प्रजा की मजहबी पुस्तकों एवं स्थानों को अत्यन्त ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह उस समय की बात है जबकि महाराष्ट्र और पंजाब में स्वराज्य की स्थापना हो चुकी थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी नीति के विरोध में मुस्लिम शासकों में एक औरंजेब हुआ, जिसने उन लोगों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जिनका इस्लाम में विश्वास नहीं था। महाराजा रणजीत सिंह ने तो अपनी राजधानी में ईसाई गिरजाघर भी बनवाया उन लोगों के लिए जो यूरोपीय थे और उनकी सेना में भरती थे।

भारतीय समाज का चार जातियों में विभाजन इतना प्राचीन है जितनी ऋग्वेद की पुस्तक हैं। जिसके पुरुष सूक्त में इसका प्रथम उल्लेख मिलता है। लेकिन, तब यह विशुद्ध रूप से प्रत्येक व्यक्ति के गुण, कर्म, स्व-भाव के अनुसार श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित थी। जातियों का यह विभाजन वहुत ही रूढ़ नहीं था, अपितु जाति परिवर्तन अत्यन्त सुवि-धाजनक था, जिसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति में निहित रुचियां जन्म लेती थीं और उसके भविष्य का विकास जिस रूप में निर्धारित होता था उसी के अनुसार उसे वही जाति प्रदान कर दी जाती थी। इसी प्रकार जाति परिवर्तन लगातार चलता रहा था। इसके उपरान्त राजनीतिक व सैनिक शक्तियां —'वर्मन' या क्षत्रिय उत्पन्न हुई। इस प्रकार गोंड व जाटों के क्षत्रिय राज्यों का विकास हुआ और राज-नयिक सत्ता प्राप्त हुई।

जाति प्रथा ने भारतीय समाज को विदेशी यूनानी, कुश, सेठियां, हूण, जो भारत में बाहर से आये थे, उन्हें अपने में समाविष्ट करने में सहायता प्रदान की। उन्हें अपने राज्यों के अनुसार अपनी-अपनी सुविधा व स्वेच्छा के अनुसार भारतीय समाज की जातियों में स्थान दे दिया गया और वे भारतीय समाज में समाहित हो गये।

राजनयिक प्रबन्ध रूप में भारत सदैव विभिन्न राज्यों में विभक्त रहा, किंतु सम्पूर्ण देश को एक राजनीतिक छत्रछाया में एकत्व प्रदान करने की दृष्टि से जो राजा अपनी महत्वाकांक्षा व वैधानिक रूप में महान् होता था उसे चक्रवर्ती राजा कहा जाता था। इसी प्रकार भरत के नाम से राजनीतिक एकत्व स्थापना की दृष्टि से हिमालय से लेकर समुद्र तक फैले विशाल भू भाग को भारत के नाम से सम्बोधित किया गया। भारतीय परम्परा व प्रथा के अनुसार भरत इस देश का प्रथम चक्रवर्ती राजा था।

इसके विरुद्ध भाषा, धर्म, जाति, प्रादेशिक व स्थानीय राजनीति के अनुसार वेश-भूषा, भोजन सम्बन्धी आदतें आदि विभाजकीय शक्तियां रही हैं, जिसने प्रत्येक काल में भारतीय मस्तिष्क को प्रभावित किया है। उपरोक्त सभी विविधताओं के मध्य ही भारतीय एकता को आधार बना।

सबसे महत्वपूर्ण व प्रथम जो कि प्रत्येक भारतीय में सार्वजनीन चेतना विद्यमान है वह यह है कि भारत एक देश है। संसार में ऐसे बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ही थोड़े देश हैं जिनकी प्राकृतिक सीमाएं पूर्णरूपेण परिभाषित हैं और संसार में कुछ ही लोग हैं जिनमें भारतीयों जैसी समान विचारधारा है। हजारों वर्ष पूर्व भारतीय साहित्य में भारतीय सीमा एवं उसका क्षेत्र निश्चित एवं निर्धारित किया जा चुका है। उदाहरणार्थ विष्णु पुराण में स्पष्ट किया है कि वह देश जिसके उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में समुद्र स्थित है वह भारत देश है।

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रिस्चैव दक्षिणाम्
वर्ष तद् भारत नाम भारती यत्र संतति ।।

विष्णु पुराण में इससे भी आगे स्पष्ट कहा गया है। यहां पूर्णरूपेण इस देश की वास्तविक लम्बाई-चौड़ाई तथा इसके पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर किस प्रकार के लोग निवास करते हैं उसका भी वर्णन मिलता है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक बात यह है कि भारतीय विचारकों, मनीषियों ने भारतीय इतिहास के मध्य संपूर्ण राष्ट्र के मानव समूहों में सदैव सारे देश को एक ही मानने की मान्यता को अपनी विधि तथा प्रयत्नों से जीवित रखा। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक, सिंधु से कावेरी तक, आवृत्त देश में सप्त पर्वत, सप्त नदियां तथा सप्त प्रसिद्ध नगरों का वर्णन भौगोलिक खंड महत्ता के कारण नहीं, अपितु संपूर्ण भारत के प्रति पवित्र भक्ति उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया है। अथर्ववेद के भूमि सूत्र के अनुसार विशेष रूप से प्राचीन भारतीय साहित्य में साधारण कथनों और भजनों में और उद्धरणों में इस भूमि का वर्णन मिलता है। इन समस्त कथनों के पीछे एक देश के अंदर समस्त बातों से ऊपर एक राष्ट्र की भावना उत्पन्न करना मूल विचार रहा है।

वास्तव में भारत देश के राजनीतिक दृष्टि से अक्सर अनगिनत राज्य रहे, किन्तु भौगोलिक एकता आधार पर ऐसा कभी नहीं किया गया, भारतीयों तथा विदेशियों दोनों के लिए भारत, हिन्दुस्थान या इण्डिया केवल एक देश के रूप में आज तक के वर्तमान संविधान निर्माताओं के समय तक रहा है, किंतु नये संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान की धारा प्रथम के अनुसार भारत को 'राज्यों का संगठन' नाम से सम्बोधित किया है। यह एक अत्यन्त भयंकर भूल है। भारत के विषय में इस प्रकार का वर्णन सत्यता, वास्तविकता तथा इतिहास के विरुद्ध है। इस विचारधारा ने उन तत्वों को जो, भारतीय एकता को छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं, उन्हें बल प्रदान किया है। जितना शीघ्र हो सके संविधान की धारा का सुधार कर लिया जाए उतना ही यह राष्ट्रीय एकता के हित में होगा।

एकता की पुष्टि

इस भौगोलिक एकता ने भारत की सांस्कृतिक एकता को परिपुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है। इस महान् देश की सांस्कृतिक एकता इतनी शक्तिशाली है कि उसके लिए किसी सबूत या तर्क की आवश्यकता नहीं। यह पूर्ण दावा है कि कश्मीर और कैलाश हिमालय में शिव की छाया, कन्या कुमारी में देवी की छत्रछाया, जिसने यह संकल्प किया कि यदि महादेव शिव से उसका विवाह नहीं होता, तो वह आजन्म कुंआरी रहेगी। राम, लक्ष्मण, हनुमान, भीम और अर्जुन, सीता, द्रोपदी, दमयन्ती के जीवन अनुकरणीय हैं। महान् यौद्धाओं और वीरांगनाओं के प्रसंग में महाकाव्य इस विस्तृत भू भाग में फैले संपूर्ण देश में एक छोर से दूसरे छोर तक जनामानस से मान्यता प्राप्त है और इससे सम्पूर्ण देश की सांस्कृतिक एकता और अधिक शक्तिशाली होती रही है, किन्तु दृष्टिहीनों को यह दिखायी नहीं देता।

संस्कृत भाषा और उसके साहित्य ने एकता की पवित्र ज्योति का देश के कोने-कोने में संचारित करने का कार्य किया है। भारत की विभिन्न भाषाओं एवं उसके साहित्य में यह सामान्य बात सबसे अधिक पायी जाती है। दक्षिण भारत की केवल चार भाषाओं को छोड़कर शेष सभी भाषाएं प्रत्यक्ष रूप से संस्कृत से ही निकलती हैं। इस प्रकार से दक्षिण में द्राविड़ों की भाषा में संस्कृत के 'तत्सम् व तद्भव' शब्द पाये जाते हैं। इन भाषाओं की ६० प्रतिशत शब्दावली की रचना संस्कृत से ही मिलती-जुलती है।

संस्कृति की अविच्छन्न धारा

इस प्रकार से समस्त भारतीयों का क्रमिक विकास, उदय, जाति, प्रथाएं, समुदाय या भाषाएं इन सब पर सांस्कृतिक परम्पराओं का बहुत ही गहन प्रभाव पड़ा है, जिसने इस देश को हर प्रकार से समृद्ध व सम्पन्न बनाने में सहयोग किया है। बहुत से ऐसे विदेशी तत्व भी आये, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को समृद्धिशाली बनाने में अपना पूर्ण योगदान किया है। लेकिन, वह गंगा जो गंगोत्री से विकसित होकर महासागर में विलीन होती है उस मध्य में अनेक धाराएं गंगा में आकर मिलती हैं, किन्तु प्रारम्भ से अन्त तक इसका नाम गंगा ही रहता है, इसी प्रकार से भारतीय संस्कृति की धारा में अनेक तत्व समाहित हुए फिर भी संस्कृति की धारा अविच्छन्न रही है और अपने इतिहास को बनाती रही है। कोई अन्य संस्कृति या वहां के निवासी इतनी अधिक विशुद्धता एवम् एकरूपता से इस प्रकार का दावा नहीं कर सकते। सब में मिलावट है। अमरीकी राष्ट्र व वहां की संस्कृति से ज्यादा मिलावटी संसार में और कोई नहीं। कोई राष्ट्र या किसी देश के निवासी इस 'मिलावट' शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा मानने से तो उनकी राष्ट्रवादिता या संस्कृति शिथिल पड़ती है और विभाजकीय शक्तियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोत्साहन मिलता है। अतः यह भ्रमपूर्ण एवम् दोषयुक्त है कि भारत के लोगों को और उसकी संस्कृति की तुलना संयुक्त राज्य अमरीका, रूस और चीन से की जाय जिनकी संस्कृति मिलावट की उत्पत्ति है। जो लोग भारतीय एकता चाहते हैं तथा उसे शक्तिशाली देखना चाहते हैं उन्हें ऐसे शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

आलोचक इस दृष्टि से अक्सर कहते हैं कि उन १० प्रतिशत अल्पसंख्यक मुसलमानों का क्या होगा जो भारतीय संस्कृति को अपना मानने से इन्कार कर दें। ठीक ऐसी ही बात अन्य अल्पसंख्यक धर्मों के बारे में नहीं कही जा सकती तथा जिनका ईसाइयों के विभाग से सम्बन्ध हो।

मुसलमान क्या करें ?

पहली बात जो इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य है वह यह है कि अधिकांश भारतीय मुसलमान विदेशी नहीं हैं। मौलाना अबुल कलाम आजाद के शब्दों में ९५ प्रतिशत परिवर्तित मुसलमान हैं। वास्तविक प्रतिशत और भी अधिक हो सकता है। अधिकांश का धर्म परिवर्तन सैनिक, राजनीतिक व आर्थिक दबाव के अन्तर्गत हुआ। उनका रक्त एक ही है। वे एक जैसी भाषा, भाषाएं बोलते हैं जैसी कि वे लोग व जो मुसलमान नहीं हैं। धर्म परिवर्तन कभी पूर्व पिताओं का परिवर्तन नहीं करता, अपितु उनमें समस्त भारतीयों के समान एकरूपता है। राम, कृष्ण, रामायण, महाभारत उतने ही उनके हैं जितने की अन्य भारतीयों के हैं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे इस देश को अपना न मानें जबकि इस्लामी कहे जाने वाले देश जैसे इण्डोनेशिया, ईरान, अफगानिस्तान हैं जो इस्लाम से पूर्व के अन्य पूर्वजों में राम को भी अपना मानने में गर्व का अनुभव करते हैं।

और अगर कोई ऐसा मुसलमान है जो भारत को जन्म से ही भारतीय राष्ट्र व संस्कृति से बिल्कुल अलग मानता है और भारतीय स्वीकार करने से स्पष्ट अस्वीकृति देता है, तो उसका यही एकमात्र उपाय है कि वह पाकिस्तान चला जाय जो इस प्रकार के भारतीय मुसलमानों की मातृभूमि के रूप में बना दिया गया है।

भारत जैसे देश में स्थायी बहुसंख्यक और अल्प-संख्यकों की बात करना पूर्णतः गलत है जहां एक सौ एक धर्म, सम्प्रदाय तथा विभिन्न प्रकार के विश्वास व मत प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए मैं आर्यसमाजी हूँ। ऐसे ही यहां अनेक सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, कबीरपंथी, राधास्वामी इत्यादि मतावलम्वी हैं। धार्मिक विचार से सभी के सभी अल्पसंख्यक हैं। किन्तु विस्तृत विचार से यह हिन्दुत्व या भारतीय विचारधाराओं की शाखाएं मात्र हैं, जो एक संस्कृति व एक जीवन पद्धति से आबद्ध हैं। इन धर्मों के राष्ट्र मण्डल में इस्लाम को मुहम्मद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंथ के रूप में स्थान दे सकते हैं, जिसकी पूजा पद्धति की एक विशिष्ट विधि है और उनकी मान्यता व श्रद्धा में विभिन्नता हो सकती है। आवश्यकता इस बात का है कि भारतीय इस्लाम को देवबंदी व अलगढ़ी मुल्लाओं के पंजे से छुड़ाकर उसका राष्ट्रीयकरण किया जाय। वास्तव में राजनैतिक प्रजातंत्र में राजनैतिक बहुसंख्या व अल्पसंख्या सदैव परिवर्तनशील रहती हैं। जनसंघ दिल्ली महानगर परिषद् में बहुमत में है। यद्यपि दिल्ली में जनसंघ दल के सदस्य हैं, लेकिन जो लोग धर्मनिरपेक्षता के अधीन अल्पसंख्यकों के धार्मिक अधिकारों की बात कहते हैं कभी-कभी यह भूल जाते हैं कि अमरीका, सूडान, सीरिया और इण्डोनेशिया में (इन मुस्लिम राज्यों में) गैर मुसलमानों की संख्या इसी अनुपात में है जैसी भारत में है। यहां तक कि पाकिस्तान में हिन्दू व बौद्ध अल्पसंख्या में हैं और पाकिस्तान की जनसंख्या उतनी ही है जितनी कि भारत में मुसलमान हैं। इन देशों ने अल्पसंख्यकों की समस्याओं और उनके समूहों के बारे में कुछ करना तो दूर रहा उन्हें अपने राष्ट्र का अंग तक मानने से स्पष्ट अस्वीकार कर दिया है। यह केवल भारत है जिसने मुसलमानों को अपने देश की आधारित एकता और अपनी संस्कृति में भाग लेने का अधिकार देकर उनके मन से अलगाव की भावना तथा पाकिस्तान की ओर देखने की कामना समाप्त-सी कर दी है और उन्हें अनुभव करा दिया है कि वे राष्ट्रीय जीवन और उसकी परंपरा के अंग हैं जबकि दूसरे रूप में कांग्रेस शासक दल तथा अन्य अनेक दल हैं, जो पृथकवादिता की भावना उत्पन्न करके चुनावों में अधिक मत प्राप्त कर जीतना अपना लक्ष्य बना चुके हैं। ऐसा करके वे राष्ट्र की एकता को आघात नहीं पहुंचाते, अपितु वे मुस्लिम सम्प्रदाय को अधिकाधिक हानि पहुंचा रहे हैं। मुसलमान यदि इस देश में प्रगति कर सकते हैं, तो वे सबसे कंधे-से-कंधा मिलाकर चलने पर ही न कि वे अलग अपनी राजनैतिक संस्था बना कर।

पूर्ण वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रजातंत्र पक्षपात व पृथक्वादिता को कोई महत्व व स्थान प्रदान नहीं करता और न ही किसी दल या व्यक्तिगत प्रत्याशी को ऐसा करने के लिए प्रेरित ही करता है। यही बात अमेरिका, ब्रिटेन तथा भारत के प्रजातंत्र के लिए भी लागू है। यह विश्रृंखला और विध्वंसकारी भावना तभी नष्ट हो सकती है जबकि देश में परिपुष्ट विचारों की राष्ट्रवादिता को महत्व प्रदान किया जाय। ब्रिटेन व अमेरिका में यही कारण है कि प्रजातंत्र को बलिष्ट बनाने के निमित्त वहां भी जन सामान्य में राष्ट्रवादिता की प्रबल भावना को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता रहा है।

भारत में हमने प्रजातंत्र को मान्यता दी है, लेकिन इसे परिपुष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाने की दिशा में बहुत ही थोड़ा प्रयास किया गया है। भारतीय राष्ट्रवाद को सबसे गहरा आघात उस समय अनुभव हुआ जबकि १९४७ में द्वि० राष्ट्रवाद के सिद्धान्त के आधार पर विभाजन स्वीकार कर लिया गया। पिछली घटना से पाठ ग्रहण करना तो दूर रहा, अपितु भ्रमपूर्ण धारणा उत्पन्न कर कुछ मुस्लिम मत जीतने के लिए उसी पुरानी घातपूर्ण नीति का ही अनुसरण किया जा रहा है। अंतर केवल परिस्थितियों का है। अंग्रेजी कूटनीतिज्ञों का स्थान कांग्रेस ने ले लिया है। मुसलमानों की नेतागिरी जिसने पृथकवादिता को जन्म दिया और जिस साम्प्रदायिकता ने सब कुछ भस्म कर दिया, आज उन्हीं के उसी पंथ का पुनः अनुसरण किया जा रहा है। इस प्रकार मुस्लिम सम्प्रदाय का गठबन्धन, साम्यवादियों, संयुक्त समाजवादियों और कांग्रेसियों से हो रहा है, जो लुके-छिपे इनमें पृथकवादिता की भावना उकसा कर चुनावों में इनका समर्थन प्राप्त कर रहे हैं।

यह अत्यन्त भयानक स्थिति है और यदि इसी प्रकार के विस्फोटक व विद्वेषपूर्ण प्रयास चलते रहे, तो भारत की एकता समाप्त हो जायगी और फिर अत्यन्त भयानक शर्मनाक रक्तपात की लहर चारों ओर दृष्टिगत होगी।

अभी समय है, वे सभी जो राष्ट्रभक्ति व राष्ट्रवादिता की भावना के विचार जनता में उत्पन्न करना चाहते हैं तथा भारतीय राष्ट्रवाद की धारा व भारतीय एकता को आधारशिला जानते हैं, मिलकर गंभीर रूप से विचार करें। राष्ट्रों का निर्माण विभिन्न सम्प्रदायों में सौदेबाजी या कोरे नारेबाजी का कोई अर्थ नहीं। वे विभिन्न भाषा, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भारतीय जीवन से अनुबन्धित हैं। उन्हें जीवन से दूर नहीं किया जा सकता। उनका जन-मानस पर पूर्णरूपेण प्रभाव है। आज की सबसे बड़ी व तीव्र आवश्यकता यह है कि उन बड़ी शक्तियों को अधिक प्रभावशाली बनावें जो अलगाव व पृथकवादिता से बचाकर राष्ट्र को समृद्धशाली बनाने में अपना योगदान दे रही हों।

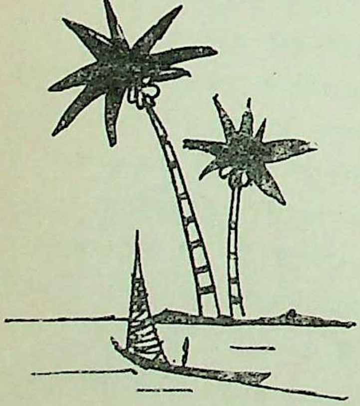

इसी प्रकार की सकारात्मक व रचनात्मक पद्धति की आवश्यकता है, जो साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावादिता की गर्दनें दबोच कर राष्ट्रीय एकता बनाये रखें। अराष्ट्रीय तत्वों ने साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावादिता को पथभ्रष्ट करके पेकिंग व पिण्डी के संकेत पर पृथकवादी शक्तियों को प्रोत्साहित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक क्षेत्र में
बिगड़ता प्रबन्ध
सुधार के उपाय

● स्वतंत्रसिंह कोठारी
संसद सदस्य

तीन पंचवर्षीय आयोजनों के दौरान सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में भारी वृद्धि हुई है। प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के आरंभ में सरकारी क्षेत्र में २९ करोड़ रुपये की लागत से पांच इकाइयां स्थापित की गयी थीं, १९६६-६७ के अन्त तक इनकी संख्या ७७ हो गयी और उन पर लगभग २८ अरब ४१ करोड़ रुपया व्यय किया गया। इसमें से एक अरब ५३ करोड़ रुपये निर्माणाधीन १८ संस्थानों पर खर्च किये गये और शेष चालू संस्थानों पर और जिन्हें बढ़ावा देने वाले, विकास सम्बन्धी तथा वित्तीय संस्थान कहा गया।

केन्द्रीय सरकार के प्रतिष्ठानों के क्रिया-कलापों सम्बन्धी महालेखा परीक्षक के १९६८ के लेखा परीक्षा प्रतिवेदन (वाणिज्यक) का विश्लेषण करने से पता चलता है कि सरकारी प्रतिष्ठानों में लगी पूंजी पर होने वाली आय में लगातार गिरावट हुई है। १९६४-६५ में यह आय ३.६ प्रतिशत थी, जो १९६५-६६ और १९६६-६७ में गिर कर क्रमशः २.९ प्रतिशत और १.५ प्रतिशत रह गयी। इसमें निर्माणाधीन प्रतिष्ठानों का लेखा-जोखा शामिल नहीं है। बाद के वर्षों में और भी गिरावट हुई। अकेले हिन्दुस्तान स्टील को १९६७-६८ में लगभग ४० करोड़ रु० की हानि हुई और ऐसा अनुमान है कि संपूर्ण सरकारी क्षेत्र में शुद्ध हानि हुई है। सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में अकुशलता, कुव्यवस्था और बर्बादी अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी है। इसके अतिरिक्त ये उद्योग अर्थव्यवस्था पर बोझ बने हुए हैं, क्योंकि इनमें लगी लगभग ३००० करोड़ रुपये की पूंजी पर कोई लाभ तो होता नहीं, जबकि उनके लिए हर वर्ष के बजट में अतिरिक्त धन की व्यवस्था करनी पड़ती है। १९६६-६७ में सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में चार अरब २६ करोड़ रुपये का और विनियोजन किया गया।

अतिरिक्त विनियोजन

	अतिरिक्त विनियोजन (१९६६-६७)	हानि (१९६६-६७)
हिन्दुस्तान स्टील लि०	**६८ करोड़**	**२०.६ करोड़**
हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन लि०	**४३ करोड़**	**६.२ करोड़**
भारत हैवी इलेक्ट्री०, लि०	**४२ करोड़**	**५.८ करोड़**
हैवी इलेक्ट्रीकल्स लि०	**१४ करोड़**	**६.८ करोड़**

पूंजी विस्तार के लिए यह अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनियोजन किया गया था, किन्तु वास्तव में इसका एक बड़ा भाग लगातार हानि से होने वाले पूंजी क्षरण के कारण उद्योगों के कोषों की हानि पूरी करने में खर्च हो गया।

सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के लिए अव और धन के अनुदान पर उचित विचार किया जाना चाहिए। जो प्रतिष्ठान ठीक काम कर रहे हैं—और ऐसे प्रतिष्ठान इने-गिने ही हैं—उन्हें विस्तार के लिए अधिक धन दिया जा सकता है और जिन प्रतिष्ठानों को लगातार घाटा होता रहा है, उनसे कहा जाना चाहिए कि अपनी व्यवस्था को ठीक करें, अपने वर्तमान साधनों का सही उपयोग करें और लाभ कमायें। ऐसे प्रतिष्ठानों को विस्तार के लिए धन तभी दिया जाये जबकि उनकी मौजूदा हालत बदले और वे आर्थिक दृष्टि से उपादेय हो जायें। विडम्बना यह है कि वित्तीय अनुशासन तथा कठोरता सुव्यवस्थित प्रतिष्ठानों के साथ बरती जा रही है। उदाहरणार्थ, अपेक्षाकृत अधिक क्षमतावान् ढंग अपनाया जाना चाहिए।

इकोनामिक टाइम्स द्वारा तैयार की गयी इस तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों की तुलना में सरकारी क्षेत्र की कम्पनियों की लाभदेयता काफी कम है। बिक्री के प्रतिशत के रूप में कुल लाभ निजी उद्योगों में १९६४-६५ के ९.९ से बढ़कर १९६६-६७ में ११.३ हो गया जबकि सरकारी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में वह ८.७ से गिर कर ४.९ ही रह गया।

इसी प्रकार लगी पूंजी के प्रतिशत के रूप में कुल लाभ १९६६-६७ के दौरान सरकारी क्षेत्र में २.१ ही हुआ जबकि निजी क्षेत्र में १०.४ हुआ। ये जीते-जागते आंकड़े दोनों क्षेत्रों की तुलनात्मक कार्य-कुशलता का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं।

सरकारी क्षेत्रों को मदद

सरकारी क्षेत्रों को मशीनरी मंगाने के लिए दिये जाने वाले आयात लाइसेंसों की उदार नीति के कारण अनेक परियोजनाओं

लाभदेयता दरों की सूची

	सरकारी कम्पनियां			निजी क्षेत्र की कम्पनियां		
	६४-६५	६५-६६	६६-६७	६४-६५	६५-६६	६६-६७
१. बिक्री के प्रतिशत के रूप में संकुल लाभ	८.७	६.५	४.९	९.९	९.४	११.३
२. उद्योग में लगी पूँजी के प्रतिशत के रूप में संकुल लाभ	२.७	२.४	२.१	१०.४	९.९	१०.४
३. कुल मूल्य के प्रतिशत के रूप में कर के बाद लाभ	१.१	०.९	१.१	९.३	८.७	१०.८

"गार्डन रीच वर्कशाप" को अपनी पूंजी बढ़ाने को दो करोड़ रुपया प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। इसके विपरीत कुव्यवस्था के लिए बदनाम हैवी ईजीनियरिंग कारपोरेशन को मुक्तहस्त से धन दिया जाता है। इस बारे में सही

में निश्चित से अधिक पूंजी खर्च हुई और उनके आरंभ होने के समय कुछ ऐसी मशीनरी भी आयात की गयी जिसका कुछ भाग परियोजना के क्रमिक विस्तार के साथ आयात करना पड़ेगा और कुछ स्थितियों में तीन या अधिक वर्ष में मंगाना होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मशीनरी के उपयोग और उत्पादनों की मांग पूरी करने के, जो अवास्तविक थीं, नाम पर मजदूरों की अंधाधुंध भरती की गयी। इसके अलावा ऐसे भी श्रमिक हैं, जिन्हें निर्माण के समय भरती किया गया, किन्तु जिनमें से अनेक को उत्पादन कार्यों में नहीं लगाया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों की अधिकता और उत्पादित क्षमता का भरपूर उपयोग न हो पाने के कारण उद्योग को हासि उठानी पड़ती है। वेतन, व्याज और घिसाई, जिन्हें आसानी से बचाया जा सकता था, उद्योग पर एक भारी बोझ बन गये।

निर्माण-श्रमिकों की समस्या सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के लिए एक सिर दर्द बन गयी, क्योंकि उनको उत्पादन की सामान्य प्रक्रिया में व्यवहारतः नहीं खपाया जा सकता है। सरकार ने अपने संस्थानों के निर्माण में तेजी लाने के लिए जिन निर्माण कम्पनियों की स्थापना की वे पूर्णतया विफल हो गयीं। यदि नये उद्योगों को इस प्रकार के बोझ से बचाना हो, तो इन कम्पनियों का पुनर्गठन करने का हर संभव प्रयत्न किया जाना चाहिए।

अकुशलता का नमूना

विभिन्न विभागों में समन्वय की कमी और उद्योग के उत्पादन कार्यों तथा विभिन्न क्षेत्रों की प्रक्रियाओं में तालमेल न होने के कारण संगठन और व्यवस्था को हानि उठानी पड़ती है। कभी-कभी तो पुर्जों या सामग्री की कमी के कारण काम रोक देना पड़ता है, तो कभी अच्छी व्यवस्था न होने अथवा श्रेष्ठ मशीनरी न होने के कारण मशीनें बंद हो जाती हैं। अनेक कारणों से कारखाने कुशलतापूर्वक काम नहीं कर पाते हैं। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध नियन्त्रण और कार्यों में समन्वय का औसत स्तर श्रेष्ठ नहीं है। इसे संस्थानों की अकुशलता तथा वित्तीय परिणामों में देखा जा सकता है।

प्रवन्धकों की वस्तु-सूची भी उच्च स्तर की नहीं है, जिसके कारण अधिकतर उद्योगों को भंडार तथा पुर्जों की अधिकता के कारण हानि उठानी पड़ती है। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में माल भरा पड़ा है। कार्यकारी पूंजी निष्क्रिय पड़ी है। वस्तु-सूचियां व्याज में वृद्धि करती हैं और यह हानि पहुंचाने वाला एक महत्वपूर्ण कारण है। इकोनामिक्स टाइम्स के एक ताजे सर्वेक्षण के अनुसार सरकारी क्षेत्र में वस्तु-सूची में वृद्धि की दर ३५.९ है जबकि निजी क्षेत्र में कुल १३.६ ही है।

नागरिक अधिकारियों का प्रभुत्व

इन परियोजनाओं में घाटे का एक बड़ा कारण इनमें नागरिक अधिकारियों का प्रभुत्व है। सरकार की यह प्रवृत्ति रही है कि उसने सरकारी निगमों को स्वतंत्र स्वायत्त संस्थाएं न समझ कर सरकारी विभागों का प्रसार मात्र समझा।

नागरिक सेवा के असीमित प्रभाव से उसने अपना एक अलग दर्जा बना लिया। नागरिक अधिकारी, चाहे वे अवकाशप्राप्त हों या प्रतिनियुक्ति पर, प्रतिष्ठानों में अपनी स्थिति महत्वपूर्ण बनाये रखने के लिए जोड़-तोड़ में अपनी सारी शक्ति लगाते हैं। यहां तक कि उच्च प्रबन्धकों की नियुक्यों में भी उन्हें प्रमुखता मिलती है। सरकारी क्षेत्र असुविधाजनक अधिकारियों को स्थानान्तरित करने अथवा अवकाशप्राप्त अधिकारियों को रोजगार दिलाने का स्रोत बन गया, भले ही उनमें औद्योगिक प्रबन्ध की क्षमता न हो। केन्द्रीय उद्योग सेवा संगठन, जिसकी बड़ी उपयोगिता थी, अन्ततोगत्वा निरर्थक सिद्ध हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में नागरिक अधिकारियों का प्रभुत्व होने के कारण उन तकनीकी कर्मचारियों को, जो इन उद्योगों में नियुक्ति के लिए सबसे अच्छे व्यक्ति सिद्ध होते, उच्च पदों पर काम करने का अवसर नहीं दिया जाता है। आधुनिक निगम में प्रायः तकनीकी जानकारी, प्राद्योगीकी प्रगतिशील प्रक्रिया और अभियंत्रण का संगम होता है। यदि इस प्रकार के निगमों को सफल बनाना है, तो उच्च योग्यताप्राप्त और क्षमतावान, तकनीकी कर्मचारियां को उद्योगों में उनका उचित स्थान मिलना चाहिए।

पूंजीवादी देश और समाजवादी अर्थ-व्यवस्था दोनों में ही आधुनिक निगमों में उच्च पदों पर तकनीक विशारदों की नियुक्ति करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि लाभ न देने वाली इकाइयों के प्रबन्ध में सुधार और प्रोत्साहन की योजनाओं पर पुनर्विचार किया जाय। "न यह करना न वह करना" की नीति में निश्चित असफलता निहित है। अधिकार को विस्तार देना और प्रबन्ध की स्वायत्तता आवश्यक है ताकि इन इकाइयों को लाभदायक आर्थिक संस्थाओं की तरह चलाया जा सके। उच्च प्रबन्ध के लिए तकनीकी विशेषज्ञों, अनुभव और योग्यतावाले व्यक्तियों को चुना जाना चाहिए न कि केवल प्रशासनिक अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों को। एक पराजित कांग्रेसी मंत्री को हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन का अध्यक्ष नियुक्त करना इस सम्बन्ध में एक स्पष्ट उदाहरण है।

कई सरकारी संस्थानों द्वारा विदेशी सहयोगियों का स्थानीय संस्थाओं से जो समझौते किये गये हैं उनकी जांच-पड़ताल के बाद गंभीर गलतियां सामने आयी हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि इन संस्थानों को भारी हानि उठानी पड़ी है। लेन-देन की शर्तें और मशीनों की अनुपयुक्त क्षमता जिसके प्रत्यक्ष कारण हैं या फिर तकनीकी सेवाएं। ये गलतियां कई मामलों में इस प्रकार की हैं कि स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या इस प्रकार के दोष भूल के कारण ही हुए हैं? पेट्रोलियम रसायन मंत्रालय के अन्तर्गत एक संस्थान के बारे में यह कहा गया है कि समझौते को वित्तीय सलाहकार कानून मंत्री अथवा विधि विशेषज्ञ ने नहीं जांचा है और इस संस्थान को समझौते में लिखी गयी कुछ शर्तों के कारण भारी हानियां उठानी पड़ी हैं क्योंकि ये शर्तें संस्थान के हित में नहीं थी। दोषपूर्ण समझौते से होने वाली हानियां उस सीमा पर पहुंच गयी हैं कि सरकार को इस दिशा में गंभीरतापूर्वक कदम उठाने चाहिए। यह आवश्यक है कि सरकार सभी सरकारी उद्योगों को यह निर्देश दे कि वे ऐसे सभी समझौतों को, जो एक लाख रुपये से अधिक के हों, विधि मंत्रालय द्वारा स्वीकृत करायें और उस मंत्रालय के एक ऐसे अधिकारी द्वारा उसे आगे बढ़ायें, जो संयुक्त सचिव की श्रेणी से नीचे के पद का न हो।

यह आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र को सुदृढ़ किया जाय, उसके विस्तार की जल्द-बाजी न की जाय। औसत १२ प्रतिशत की कुल आय (ब्याज और घिसाई निकाल कर) से भी सरकार को लगभग तीन अरब ५० करोड़ रुपये मिल सकते हैं, इससे सरकार के आय-स्रोत सुधरेंगे और विकास के लिए आन्तरिक कोष भी उपलब्ध होगा। इतनी आय असम्भव नहीं है बशर्ते उसे प्राप्त करने की इच्छा हो, भ्रष्टाचार और अक्षमता दूर की जाय, सही पद्धतियां अपनायी जायं और ठीक अधिकारियों की नियुक्ति की जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षा : आणविक अस्त्र व आर्थिक विकास

अपने व्यवसाय के प्रति ईमानदार अर्थशास्त्री प्रतिरक्षा व्यय की समस्या पर कुछ निष्कर्षों के साथ विचार करता है और उसकी इस प्रक्रिया को सहज ही नहीं समझा जा सकता। वह इस व्यय पर सामाजिक लागत और लाभ को दृष्टिगत रखते हुए विचार करता है और लागत निकालने की उसकी विधि अकाउन्टेंट से बिल्कुल भिन्न होती है। इसका आशय यह है कि एक अर्थशास्त्री के निष्कर्षों की सराहना करना कठिन है, क्योंकि एक गैर-अर्थशास्त्री की दृष्टि में आर्थिक अथवा सामाजिक लागत (और लाभ) को एक हिसावी या वजट सम्बन्धी लागत से अलग करना कठिन है। एक साधारण उदाहरण लीजिए : यदि किसी परियोजना में ३०,००० ऐसे इंजीनियरों का उपयोग होता है, जो आजकल बेकार हैं, तब एक अर्थशास्त्री के अनुसार वेतन व्यय शून्य होता है, जबकि एक अकान्टेन्ट की दृष्टि में वेतन व्यय बराबर होता है ३०,००० एक्स वेतन दर, जो निस्सन्देह, शून्य से स्पष्टतः भिन्न होती है। व्यय राशि निकालने में इस बुनियादी अन्तर का कारण यह है कि एक अर्थशास्त्री अवसर व्यय की मान्यता का अधिक उपयोग करता है। संक्षेप में, किसी परियोजना का अवसर व्यय, इस परियोजना को सम्पन्न करने के लिए सर्वोत्तम पूर्वगामी विकल्प है। इस प्रकार जल विद्युत शक्ति द्वारा बिजली पैदा करने की विकल्प हैं बिजली पैदा करने की अन्य प्रणालियां तथा आणविक शक्ति। ३०,००० बेकार इंजीनियरों को काम में लगाने के उक्त उदाहरण में, देश किसी प्रकार के उत्पादन को नहीं त्याग रहा है; इसलिए रोजगार का सामाजिक अथवा अवसर व्यय शून्य है। इसके विपरीत, यदि ये इंजीनियर पहले से किसी औद्योगिक संयत्र में काम से लगे हुए हैं और उन्हें वहां से हटाकर अन्य संयंत्र में लगाया जाय, तो प्रथम संयंत्र में जो उत्पादन घटेगा वही अवसर व्यय है और यह सामाजिक व्यय का प्रतिनिधित्व करता है। चूंकि अर्थशास्त्र का सम्बन्ध साधनों की विवशता के साथ अधिक उत्पादन करना है, अवसर व्यय की मान्यता समाज की दृष्टि से अधिक समुन्नत और श्रेष्ठ है, क्योंकि इस प्रकार शून्य निकालने से दरअसल यह मालूम पड़ता है कि कुछ अन्य प्राप्त करने के लिए समाज को क्या कीमत चुकानी पड़ रही है। पर इसका उपयोग बहुत सावधानी से करने की आवश्यकता है, क्योंकि इस मान्यता का दुरुपयोग बड़ी आसानी से हो सकता है। उदाहरणार्थ, प्रायः यह कहा जाता है कि एक आधुनिक बमवर्षक को बनाने में समाज को ३० हजार नगरों में ईटों के आधुनिक स्कूल अथवा १,२०,००० लोगों को बिजली पहुंचाने वाले दो विद्युत शक्ति संयंत्रों अथवा दो सर्वसाधनों से युक्त अस्पतालों को त्यागना होगा। अवसर व्यय का इस प्रकार हिसाब लगाना खतरनाक और गलत है।

● सुब्रह्मण्यम स्वामी

लेखक इस समय हारवर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) में अर्थशास्त्र के अध्यापक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवसर व्यय का हिसाब लगाना तभी उचित हो सकता है, जबकि विचारार्थ विकल्पों का एक ही लक्ष्य हो। अतः राष्ट्र को, जिसे युद्ध का खतरा है या जो युद्धरत है, सिनेमा-थियेटरों आदि के रूप में विकल्पों को त्यागना मूर्खतापूर्ण है। किन्तु ये ही विकल्प शांतिकाल की अर्थव्यवस्था में उपयोगी हो जाते हैं, क्योंकि उस समय लक्ष्य केवल यही होता है कि उपभोक्ताओं के कल्याण के कार्य अधिकाधिक किए जायं। संक्षेप में कहा जाय, तो यही कारण है कि अवसर व्यय की मान्यता को इतना बुनियादी माना गया है, क्यों कि वह सामान्य समाज की पूर्व स्थितियों पर भलीभांति विचार करती है।

बाह्य खतरों का रूप

इस मान्यता को यहां अपने लक्ष्यों पर लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत को जो बाह्य खतरे हैं उनके स्वरूप को अच्छी तरह समझा जाय। यह स्पष्ट है कि बड़ी शक्तियां, अमेरिका, रूस और चीन आज अपने राष्ट्रीय स्वार्थों से प्रेरित हैं। इस संसार को आज (और १९७० के बाद के वर्षों में) जो शक्तियां ढकेल रही हैं वे राष्ट्रीय स्वार्थों और सत्ता की लालसा से प्रेरित हैं। जब मुक्त जनवादी राज्य—रूस और चीन के दो महान् नेता तथा एक बड़ा प्रजातन्त्र अमेरिका, भारत जैसे महानतम लोकतंत्र और प्रमुख साम्राज्यवादी—विरोधी देश के स्पष्ट विरोध में जब इस्लाम के नाम पर कुछ ही लोगों द्वारा शासित पाकिस्तान को सशस्त्र करना उचित समझते हैं, तब यह बात साफ हो जाती है कि अब ऐसा समय आ गया है जबकि विचारधारा और सिद्धांतों से यह संसार प्रेरित नहीं होता बल्कि राष्ट्रीय स्वार्थों और सत्ता की लालसा से प्रेरित होता है।

यदि राष्ट्रीय स्वार्थों और सत्ता की लालसा को ही विदेशनीति का मुख्य लक्ष्य मान लिया जाता है, तो भारत की विदेश-नीति को इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए कि वह विश्व सत्ता के वर्तमान विभाजन को बदलने का प्रयत्न कर सके।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बड़ी शक्तियां · अमेरिका, रूस और चीन अब विचारधारा से प्रेरित नहीं हैं, बल्कि अपने राष्ट्रीय स्वार्थों से ही प्रेरित हैं। ये तीनों देश अब शक्ति-सन्तुलन के ऐसे उपयुक्त विचार से अधिक सम्बन्ध रखते जान पड़ते हैं, जिससे विश्व में शान्ति भी बनी रहे और साथ ही उनको अपने राष्ट्रीय स्वार्थों की बलि भी न देनी पड़े। शक्ति सन्तुलन का उनका यह विचार १९६२ के क्यूबा और चीन-भारत संघर्षों, वियतनाम, १९६५ के भारत-पाक युद्ध और १९६७ के अरब-इजराइल युद्ध में जो अनुभव हुए उनके आधार पर बना है। शक्ति-सन्तुलन का यह विचार अपने-आपको दो स्तरों—विश्व और स्थानीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विभाजित करता है। विश्व स्तर पर, यह शक्ति-सन्तुलन केवल इस बात पर सहमत होकर कायम रखा जाता है कि ये देश एक दूसरे के साथ कभी सीधे संघर्ष में नहीं उतरेंगे। इस प्रकार के सीधे संघर्ष आसानी से टाले जा सकते हैं, क्योंकि रूस और अमेरिका के मध्य सीधा टेलीफोन सम्बन्ध है, जो 'गरम लाइन' के नाम से प्रसिद्ध है। अमेरिका और चीन में (१९५६ से) नियमित रूप से वारसा में राजनयिक बैठकें होती हैं और निस्सन्देह, रूसियों और चीनियों में घनिष्ठ दूतावास संबंध चले आ रहे हैं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अप्रैल, १९६७ में जब ल्यू शाओ ची के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास करने के लिए माओ पोलितब्यूरो का बहुमत प्राप्त नहीं कर सका और उसके परिणाम-स्वरूप सांस्कृतिक क्रान्ति के छिन्न-भिन्न हो जाने के पश्चात् रूसियों ने चीन को खुश करने के लिए कई कदम उठाये हैं, जिनमें उनकी हाल ही की यह कार्रवाई भी सम्मिलित है जिसके अनुसार रूस द्वारा प्रकाशित 'विश्व एटलस' के नवीन संस्करण में आक्साईचिन और नेफा के सम्पूर्ण क्षेत्र को चीन का भाग दिखाया गया है। अमेरिका में, राष्ट्रपति पद के सभी प्रमुख उम्मीदवारों ने यह विचार व्यक्त किया है कि चीन के साथ समझौता आवश्यक है। चीन ने, जो प्रतिवर्ष ८० लाख मीट्रिक टन से अधिक गेहूं का आयात करता है, वर्तमान में कनाडा से आयात किये जाने वाले मेनिटोबा किस्म की तुलना में अमेरिका में पैदा होने वाले मोनटाना गेहूं में बहुत दिलचस्पी दिखायी है। सावधानी से यदि सारी स्थिति का अध्ययन किया जाय तो यही मालूम पड़ता है कि तीनों बड़े राष्ट्रों में पारस्परिक संबंध प्रगाढ़ होते जा रहे हैं। अतः यह अनुमान लगाना उचित है कि अमेरिका, रूस और चीन में केवल इस कारण कि उनके पास आणविक शस्त्र हैं, परस्पर सीधे संघर्ष की संभावना दिखाई नहीं पड़ती और इसलिए इस प्रकार का संघर्ष इन राष्ट्रों के राष्ट्रीय हित में भी नहीं है। संसार इन तीन संघर्षों—१९६५ के भारत-पाक युद्ध, और १९६७ के अरब-इजराइल युद्ध तथा वियतनाम युद्ध और चेकोस्लोवाकिया पर हुए आक्रमण में बड़ी शक्तियों के स्पष्ट और शंका से परे पारस्परिक सहयोग को देख चुका है।

भारत को खण्ड-खण्ड करने की योजना

विश्व स्तर पर शक्ति-सन्तुलन बनाये रखकर ये बड़े राष्ट्र अब स्थानीय स्तर पर शक्ति-सन्तुलन कायम रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे संसार को तनाव के अनेक खण्डों के रूप में देखते हैं। ये हैं पूर्वी-पश्चिमी जर्मनी, अरब देश और इजराइल, भारत और पाकिस्तान, मलेशिया और इण्डोनेशिया, उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम, उत्तरी और दक्षिणी कोरिया। बड़े राष्ट्रों की दृष्टि में, ये देश स्थानीय सत्ता के रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हैं और इनके विवाद ही असन्तुलन के स्रोत हैं। शक्ति-सन्तुलन बनाये रखने के लिए इन प्रतियोगी स्थानीय शक्तियों में परस्पर सैनिक और आर्थिक समानता बनी रहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इनमें से प्रत्येक देश को अपनी निजी क्षमता का विकास नहीं करना चाहिए, क्योंकि यदि वे ऐसा करते हैं, तो बड़े राष्ट्रों के हाथ में शक्ति-सन्तुलन कायम रखने की जो सत्ता है, वह कम हो जायगी। इसलिए आकर्षक शर्तों पर कुछ मात्रा में शस्त्र दिये जाने चाहिए और आणविक शस्त्र प्रसार प्रतिरोध सन्धि तथा फरक्का बांध अन्तरराष्ट्रीय सन्धि कराने के प्रयत्न होने चाहिए। पी० एल० ४८० और आर्थिक योजनाओं को सहायता देना अन्य उपाय हैं। अमेरिका के एक सम्माननीय अधिकरण ने इस सम्बन्ध में कहा है:—

'बाह्य निर्भरता के इसी सिद्धान्त के अनुसार विकाशील देशों को उनकी निजी उत्पादन क्षमता विकसित करने की अनुमति देने की अपेक्षा शस्त्र-हस्तांतरण के द्वारा सैनिक सहायता दी जानी चाहिए।

सैनिक शक्ति में असमानता और सम्बन्धित पक्षों की क्षमता शीघ्र शत्रुता समाप्त करने की अपेक्षा युद्ध भड़काने का साधन बन सकती है, जैसा कि कश्मीर की स्थिति से स्पष्ट है।

इस जटिल समस्या का हल यह है कि शक्तिशाली पड़ोसियों में बराबरी और समानता को प्रोत्साहित किया जाय, किन्तु यह कार्य निम्नतर स्तर पर किया जाना चाहिए, आदर्श तो यह है कि आंतरिक प्रतिरक्षा सेवाओं के स्तर पर किया जाय।' (स्थानीय संघर्ष पर नियंत्रण भाग ३ अमेरिकी शस्त्र नियंत्रण और निरस्त्रीकरण एजेन्सी, अमेरिकी सरकार (१९६७, पृष्ठ ३३९)।

हमारी प्रतिरक्षा नीति को विश्व सत्ता के इस दिखायी पड़ रहे विभाजन को तोड़ना चाहिए। बड़े राष्ट्रों का, विशेषकर भारत के प्रति संदेहात्मक रुख है, क्योंकि शक्ति-सन्तुलन की इस नाजुक योजना में यही एक ऐसा देश है, जो इस सत्ता के सम्बन्ध को पूरी शक्ति के साथ चुनौती दे सकता है और उसकी नये ढंग से व्याख्या कर सकता है। भौगोलिक और जनसंख्या की दृष्टि से भारत बड़ा विशाल देश है। इसकी आर्थिक सम्भावनाएं भी बहुत हैं। यह आणविक शक्ति की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित छाह रष्ट्रों में से एक है और इसके पास संसार का ६० प्रतिशत थोरियम है। दक्षिण-पूर्वी ऐशिया में जो इसका ऐतिहासिक प्रभाव है, वह ईर्ष्या का विषय है। भारत इस विश्व शक्ति-सन्तुलन को, जिसे बड़े राष्ट्रों ने लगभग दस वर्षों तक धन और रक्त बहाकर खड़ा किया है, अत्यन्त निश्चयात्मक रूप से अस्त-व्यस्त कर सकता है। **यदि भारत इस शक्ति-सन्तुलन को चुनौती नहीं देता है, तो भी केवल यह तथ्य कि**

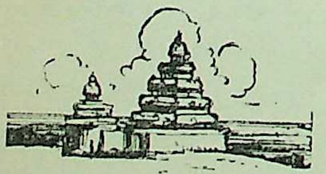

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें कभी भी ऐसा करने की पूरी सामर्थ्य है, विश्व के बड़े राष्ट्रों के लिए काफी चिन्ता का विषय बना हुआ है। अतः भारत की इस सामर्थ्य को कम करना ही बड़े राष्ट्रों का स्पष्ट लक्ष्य दिखायी पड़ता है। आणविक-अस्त्र प्रसार निरोधक सन्धि एक हथियार है। भारतीय प्रदेश पाकिस्तान अथवा चीन को दे देना अन्य हथियार है। विध्वंसक और पृथकतावादी दलों की, जो नागालैण्ड और भारत के अन्य स्थानों में सक्रिय हैं, आर्थिक सहायता देना और प्रोत्साहन देना प्रमुख लक्ष्य हैं। समय-समय पर स्थानीय सैनिकों में सीमा-संघर्ष करा देना, जिससे भारत अपने साधनों को सैनिक सामान जुटाने में लगा दे, यह भी प्रभावशाली हथियार है। संक्षेप में, कोई भी कार्य, जो भारत के विघटन अथवा खण्ड-खण्ड होने में सहायक हो, बड़े राष्ट्रों के राष्ट्रीय स्वार्थों की पूर्ति करता है।

आणविक व्यय का थोथा तर्क

इस पृष्ठभूमि में हमें प्रतिरक्षा व्यय के प्रश्न पर विचार करना चाहिए। केवल व्यय के तर्क से हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकते, क्योंकि भारत के सामने केवल दो ही विकल्प उपलब्ध हैं – या तो वह अपने प्रतिरक्षा साधनों को (जिनमें आणविक अस्त्रों का निर्माण भी सम्मिलित है) आधुनिक बनाये या बड़े राष्ट्रों की शक्ति-सन्तुलन की मान्यतानुसार दूसरी श्रेणी का स्थान स्वीकार कर ले। यह निर्णय करने में हम जितनी अधिक देर करेंगे उतनी ही दूसरी विकल्प को भारत पर निश्चित लाद दिये जाने को संभावना बढ़ती जायगी। यदि हम दूसरे दर्जे के राष्ट्र के रूप में ही रहना चाहते हैं, तो हमें अपने-आपको और जनमत को भी इसके लिए तैयार करना होगा कि कश्मीर के मामले में संयुक्त राष्ट्र संघ के ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाय और आक्साईचिन, नागालैण्ड, कच्छ, लक्षद्वीप समूह, कच्चातीवू और त्रिपुरा को सदा के लिए भारत से अलग कर दिया जाय। सोचने का ढंग इतना अस्थिर है कि वास्तव में अपनी प्रतिरक्षा क्षमता को आधुनिक बनाने के अलावा हमारे सामने अन्य कोई विकल्प शेष नहीं रहेगा।

प्रतिरक्षा साधनों को आधुनिक बनाने का तात्पर्य यह नहीं है कि हमें ऐसा पागलपन सवार हो जाय कि हम चंद्रमा को भेजे जाने वाले ऐसे प्रक्षेपणास्त्र का आधार बनाने की सोचें जिसका लक्ष्य वाशिंगटन, मास्को और पेकिंग हो। दुनिया का कोई भी देश भारत का सर्वनाश करने की तकनीकी दृष्टि से धमकी नहीं दे सकता, यह सोचकर देखा जाय, तो अवसर व्यय बहुत अधिक है।

प्रतिरक्षा पर व्यय करने का बुनियादी लक्ष्य एक ऐसी स्थिति का निर्माण करना है, जिसमें भारत शान्ति के वातावरण में अपना आर्थिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सामाजिक विकास कर सकें । देश के भीतर और बाहर ऐसी शक्तियां हैं जिनके उद्देश्य पूर्णतः अवांछनीय हैं और इसलिए ऐसी शक्तियों पर अंकुश रखने के लिए ही सैनिक साधनों को बनाये रखना आवश्यक है। इस अर्थ में, प्रतिरक्षा पर व्यय सामाजिक ऊपरी पूंजी (ओवरहैड कैपिटल) का निर्माण करना है और इस सीमा तक आर्थिक विकास के लिए आवश्यक विनियोग है। हम परिवहन और संचार के क्षेत्रों में इसी उद्देश्य से विनियोग करते हैं—हालांकि इन विनियोगों से होने वाले लाभ की दर* भले ही अत्यधिक ऊंची नहीं हो, फिर भी अन्य विनियोगों के हित में इनको किया जाना चाहिए। हमारे सामने चीन का आणविक खतरा बना हुआ है और यदि हम आवश्यक सामाजिक ऊपरी पूंजी के लिए प्रतिरक्षा पर पर्याप्त मात्रा में विनियोग नहीं करते, तो इस खतरे के कारण हमारा आर्थिक आयोजन पूर्णतया अस्त-व्यस्त हो सकता है। उदाहरण के लिए, चीन १९७२ में आणविक खतरा खड़ा कर सकता है। ऐसा कई कारणों से संभव है, जिनमें से दो का यहां उल्लेख किया जा सकता है—(१) चीन द्वारा प्रारंभ किया गया परम्परागत युद्ध उसके लिए विनाशकारी रूप ले सकता है। इस परम्परागत युद्ध को बन्द करने के लिए चीन आणविक धमकी दे सकता है। (२) कश्मीर में पाकिस्तान के साथ परंपरागत युद्ध को चीन शांति के नाम पर आणविक धमकी देकर रोक सकता है। चीन यह जानता है कि कश्मीर के प्रश्न पर उसके अपने रुख और विश्व के मत में बिल्कुल समानता है। इसलिए उसके द्वारा दी गयी आणविक धमकी पाकिस्तान के प्रति मैत्री प्रदर्शित करेगी और कश्मीर पर समझौता करने के लिए बाध्य करने का अवसर भी प्रदान करेगी। इस प्रकार की साहसिक नीति अपनाने के कई लाभ हैं। चीन द्वारा इस आणविक धमकी के दिये जाने की प्रबल संभावनाएं हैं। अतः प्रश्न यह है कि एक सुलझे हुए आर्थिक आयोजक को क्या करना चाहिए ? दरअसल दो संभव विकल्प

---

*वास्तव में, परिवहन के क्षेत्र में पूंजीगत उत्पादन का अनुपात १६.० है।

१९५२ में, अमरीका ने चीन को गुप्त रूप से दूर वीं समानान्तर रेखा पार न करने के लिए आणविक धमकी दी थी। १९५८ में, अमरीका ने फिर चीन को क्यूमोय और मात्सू के मामलों में आणविक अस्त्रों के प्रयोग की धमकी दी थी। १९६८ में अमरीकियों ने यह खबर फैला दी कि खेसान के आस-पास आणविक अस्त्र जमा है। इस बात पर कोई आश्चर्य कर सकता है कि यदि चेकोस्लोवाकिया के पास आणविक अस्त्र होते, तो क्या रूस उस पर आक्रमण करने का साहस कर सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है : एक तो यह अटकलवाजी लगाते रहना कि चीन आणविक धमकी नहीं देगा और यदि कभी वह ऐसी धमकी दे भी दे, तो चीनी गप्प कह कर उसकी उपेक्षा कर दे। दूसरा विकल्प यह है कि देश में आणविक शक्ति का निर्माण किया जाय जैसे १०० इंटरमीजिएट रेंज के प्रक्षेपणास्त्र आणविक 'वारहेड्ज' के साथ और चीन की आणविक धमकी मिलने पर उसे वदले में यह धमकी दी जाय कि २,००० मील रेंज वाला आई० आर० वी एम० अनशन, चूंगकिंग, हांगकाऊ, लानचाऊ, शंघाई, पीकिंग और संभवत: मुकड़न पर प्रहार कर सकता है अर्थात् हमारी प्रति प्रहार क्षमता के सम्वन्ध में चीनी रण-विशेषज्ञों को दुविधा में डाल दो।

चीनी आक्रमण से शिक्षा

प्रथम विकल्प पर निर्भर करना वहुत खतरनाक है। १९५० से वाद के वर्षों में हमने अपनी प्रतिरक्षा के लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था नहीं की, क्योंकि हम ऐसा मानते थे कि पंचशील के सिद्धान्त के कारण चीनी आक्रमण की कोई संभावना नहीं है। ठीक है, आक्रमण नहीं हुआ और जनमत तथा विक्षोभ ने इस देश को अपना प्रतिरक्षा वजट अचानक चौगुना करने के लिए वाध्य किया। इस प्रकार ग्यारह वर्ष (१९५१-६२) में हमारा प्रतिरक्षा वजट एक अरव ५० करोड़ रुपये से वढ़कर दो अरव ५० करोड़ रुपया हो गया या १९६३ से १९६६ तक लगभग ६८ प्रतिशत, अथवा चार वर्ष में वह दो अरव ५० करोड़ रुपये वढ़कर दस अरव रुपया हो गया या ३०० प्रतिशत की वृद्धि हुई। सौभाग्य से यह वृद्धि सूखे और औद्योगिक मंदी के पूर्व हुई, किन्तु तो भी, इसने तीसरी पंचवर्षीय योजना को विल्कुल अस्त-व्यस्त कर दिया और सूखे के साथ मिल कर चौथी पंचवर्षीय योजना में कटौती कर दी। एक सूझ-वूझ वाला आर्थिक आयोजक चीन की धमकी को ध्यान में रखते हुए प्रतिरक्षा की राशि को पन्द्रह वर्ष में क्रमश: और सुचारु रूप से वढ़ा कर एक अरव ५० करोड़ रुपये से दस अरव रुपया तक पहुंचा देता। इसके दो लाभ हैं : पहला, तो यह कि इसे सामाजिक ऊपरी पूंजी के भाग के रूप में आयोजित किया जाय। दूसरा, यह कि पंद्रह वर्ष में प्रतिरक्षा पर व्यय की गयी राशि अधिक होगी। पन्द्रह वर्ष में (१९५१-१९६६) प्रतिरक्षा पर हमने जो वास्तव में खर्च किया वह ५० अरव रुपये के वरावर है। यदि हम अपने प्रतिरक्षा वजट में व्यवस्थित वृद्धि करके उसे एक अरव ५० करोड़ रुपये से दस अरव रुपये पर ले आते, तो प्रतिरक्षा साधनों पर हम जो राशि खर्च करते वह एक खरव ७० अरव रुपये के लगभग होगी। इससे भारत की व्यवस्थित ढंग से पर्याप्त सुरक्षा होती और यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि इस तैयारी के कारण चीन हम पर आक्रमण नहीं करता, तो साधनों और प्रशिक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तियों के रूप में प्रत्यक्ष [illegible] रुपये की बचत हो जाती। १९६२ के सन्तुलन विगाड़ देने वाले संदर्भ के न होने से भी अप्रत्यक्ष बचत काफी कम से कम करोड़ रुपये की और होती। **अर्थात्, १९५१ से १९६६ तक प्रतिरक्षा पर खर्च की गयी वास्तविक राशि ५० अरब रुपया नहीं, बल्कि ५०-१०-२०=२० अरब रुपया थी।**

कोई कह सकता है कि यह सब मोटी बुद्धि है। यदि मोटी बुद्धि हमें भविष्य के लिए आयोजन करने में सहायक हो सकती है, तो वह उपयोगी है। हमारे आर्थिक आयोजकों में यह मोटी बुद्धि भी दिखाई नहीं देती, क्योंकि १९५० से बाद के वर्ष में जो तर्क लिये जाते थे वे फिर सुने जाने लगे हैं। इस बार, यह तर्क दिया जाता है कि आणविक शस्त्रों के होने से सुरक्षा नहीं होती—यदि हम प्रतिरक्षा के लिए धनराशि निर्धारित करेंगे, तो आर्थिक विकास का कार्य मंदा पड़ जायगा—कि चीन अथवा अन्य कोई देश आणविक अस्त्रों का उपयोग करेगा, यह भय उत्पन्न करने वाले व्यक्ति का दृष्टिकोण है। अतः यह दलील दी जाती है कि हमें आणविक हथियार न बनाने की, 'जानी मानी जोखिम' उठानी ही चाहिए। ये दलीलें एक जैसी हैं और संभवतः पुरानी है, 'किन्तु परिस्थितियां बदल चुकी हैं। पहली बात तो यह कि हमारे पास ऐसा प्रभावशाली नेतृत्व नहीं है, जो विरोध को दबा सके। भारत का जनमत बम बनाने के पक्ष में है। (इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपिनियन, नयी दिल्ली के अनुसार यह प्रतिशत ७५ हैं) अतः यदि आणविक धमकी दी जाती है, तो जनमत और विक्षोभ द्वारा बम बनाने की मांग की जायगी। चूंकि हमारा देश लोकतांत्रिक है, इसलिए कोई भी नेता इस मांग को स्वीकार किये बिना अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। यहां तक कि श्री नेहरू को जनमत के सामने झुकना पड़ा और कृष्ण मेनन को हटाना पड़ा था।

यदि भारतीय मतदाता शिक्षित और गंभीर हो जाय, तो कोई भी नेता जानबूझ कर यह जोखिम नहीं उठायेगा, क्योंकि मान लीजिए कि वह विशेष वर्ष भी सूखे और विदेशी मुद्रा के संकट का वर्ष हो, तो नेताओं द्वारा क्या पैंतरेबाजी की जायगी? अतः ऐसी स्थिति में, सहायता के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ जैसे विश्व-संगठन की शरण लेनी पड़ेगी। किन्तु हम इस बात के लिए पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो सकते कि संयुक्त राष्ट्रसंघ हमारे मामले में निश्चित रूप से कोई कदम उठायेगा। वास्तव में, कश्मीर और कच्छ के मामलों में पिछले अनुभवों को देखते हुए, उसका रुख बिल्कुल प्रतिकूल हो सकता है। कश्मीर पर किसी भी असंगत प्रस्ताव, जैसे उसके अन्तरराष्ट्रीयकरण करने की मांग का अनिवार्य परिणाम यही होगा कि उग्रवादी शक्तियां सत्तारूढ़ हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगी। इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि विदेशी शक्तियों द्वारा अपमानित होने के बाद आमतौर पर उग्रवादी सत्तारूढ़ हुए हैं (उदाहरण के लिए हिटलर का जर्मनी और माओ का चीन) संक्षेप में, इस 'जानबूझ कर खतरा उठाने की नीति' के कारण ही एक बार १९६२ में हम बुरी तरह पिट चुके हैं। इस नीति में इतने दोष हैं कि यह बिल्कुल ही अनुपयुक्त हो गयी है। सामाजिक ऊपरी पूंजी निर्माण का केवल एक ही मार्ग है और वह यह कि आणविक अस्त्रों और उनके सहायकों का उत्पादन किया जाय।

अन्य शब्दों में, आणविक अस्त्र निर्माण कार्यक्रम पर जो व्यय होता है उसे आर्थिक विनियोग का ही अंग माना जाय।

प्रतिरक्षा व्यय से आर्थिक विकास को प्रोत्साहन

प्रतिरक्षा पर व्यय आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य विनियोग है और १९५१-६६ की अवधि में हमने पर्याप्त सामाजिक ऊपरी पूंजी का निर्माण नहीं किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि हमारे विकास सम्बन्धी प्रयत्नों में बाधा उत्पन्न हुई। यह भूल दुबारा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अवसर व्यय बहुत अधिक है।

प्रतिरक्षा व्यय से आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप में भी प्रोत्साहन मिलता है। गत २५ वर्ष के जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तकनीकी मेघ रंध्र (टैक्नालाजिकल ब्रैकथूज) हैं वे (१) रडार (२) अणु शक्ति (३) जेट इंजन और (४) अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में की गई सैनिक खोज के ही परिणाम हैं। अंतरिक्ष अनुसंधान के द्वारा बुनियादी सामग्री, जल शुद्धीकरण और मानव के स्वास्थ्य सम्बन्धी पर्याप्त जानकारी के रूप में मेघ-रंध्र प्राप्त हुए हैं। संभवतः यह जान कर आश्चर्य होगा कि राकेट के ईंधन के एक भाग से भावनात्मक नैराश्य के उपचार की एक प्रमुख औषधि बनाई गई है। यह केवल युद्धोत्तर घटना नहीं है। बंदूक का बारूद सर्वप्रथम मुख्यतः युद्ध का ही एक साधन था। बाद में टी० एम० टी० के रूप में उसका उपयोग नहरों, सड़कों और सुरंगों के निर्माण में होने लगा। बेतार के तार के संबंध में हर्टज की शानदार खोज की तब तक उपेक्षा होती रही, जब तब प्रथम विश्वयुद्ध में उसकी बहूपयोगिता का प्रदर्शन नहीं हो गया। यह सूची बहुत बड़ी है, किन्तु एक समकालीन तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया जाना आवश्यक है—आणविक विस्फोट, जो सैनिक उपयोगिता की दृष्टि से प्रारम्भ हुए, नितान्त शान्तिपूर्ण कार्यों में उपयोग में लिये जा सकते हैं। गैसें बहुधा 'कठोर' (टाईट) चट्टानों से घिर जाती हैं। केवल आणविक शक्ति में ही इन गैसों को बाहर निकालने की आवश्यक विस्फोटक सामर्थ्य है। रासायनिक विस्फोटों का इस प्रकार की चट्टानों पर कोई प्रभाव नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता। यदि आणविक विस्फोटक को धरातल के काफी नीचे गाड़ दिया जाय, तो विस्फोट होने पर वह एक बहुत बड़ा गड्ढ़ा बना देगा, जो अनेक वस्तुओं और विशेषकर गैस के हौज का काम दे सकता है। यदि विस्फोट से प्यालानुमा जगह बन जाती है, तो सड़कें, नहरें और सुरेंगे कम खर्च में तैयार हो सकती हैं। समुद्र के नीचे कैरोजैन नामक पदार्थ होता है, जो प्रचण्ड ताप मिलने पर तेल में परिवर्तित हो जाता है। आणविक विस्फोटों से तांबा खदानों से बहुत ही सस्ते मूल्य पर (५० प्रतिशत जस्ता) निकाला जा सकता है। अतः, हम इससे इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि आमतौर पर आणविक विस्फोटक रासायनिक विस्फोटों से श्रेष्ठ होते हैं, क्योंकि उनके द्वारा आर्थिक निर्माण के नये आयाम खुलते हैं और दूसरी बात यह है कि वे आर्थिक दृष्टि से अधिक व्यावहारिक हैं, जैसा कि निम्नलिखित तालिका* से स्पष्ट है।

तुलनात्मक ऊंर्जा लागत

ऊंर्जा का स्रोत	लागत व्यय (डालर/१० लाख ब्रि० थ० यू०)
मेगाटन ताप आणविक विस्फोटक	०-०७५
लिगनाइट	०-१४-०-१७
साफ्टक्रेल	०-१५-०-२०
प्राकृतिक गैस	०-१५-०-२०
जल-शक्ति	०-८९
गैसोलिन	१-५०
बिजली	१-७८
अमोनियम नाइट्रेट	४-५०
टी० एन० टी०	२५०-०

* अमरीकी आणविक ऊंर्जा आयोग : प्लोशेअर, डिवीजन आफ टैकनिकल इन्फरमेशन (१९६६)।

टिप्पणी : यहां एक चेतावनी दी जानी आवश्यक है जबकि एक द्रवत्व (फ्यूजन) की प्रतिक्रिया एक जीव-कोष खंड (फिस्सियांन) की प्रतिक्रिया की तुलना में कम ऊंर्जा उत्पन्न करती है, प्रत्येक जीव-कोषों में विभाजित होने वाले (फिस्सियोंनेविल) अणु (यूरेनियम अथवा प्लूटोनियम) का वजन ड्यूटेरियम के अणु की तुलना में सौ गुना अधिक होता है। इस प्रकार वजन के आधार पर महत्वपूर्ण बात यह है कि ताप आणविक विस्फोटक अधिक शक्तिशाली होते हैं। इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलावा, ताप तौल का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। यदि १० किलोटन के विस्फोटक की लागत पर विचार किया जाय, तो १० लाख ब्रि० थ० यू० की लागत ८.७५ डालर बैठेगी, जो आर्थिक दृष्टि से महंगी होगी। अतः डा० भाभा की कल्पनानुसार हमारे अणु-शक्ति कार्यक्रम को थोरियम समस्या (विबैलेफ्नकी) को तत्काल हल करना चाहिए। (ब्रि० थ० यू०—ब्रिटिश थर्मल यूनिट)

समय की प्राथमिकता की सामाजिक दर

अव एक उचित प्रश्न किया जा सकता है। माना कि आणविक विस्फोटक नये तकनीकी उपाय हैं। पर सैनिक उपयोग के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करने की अपेक्षा हम उसके प्रत्यक्ष रूप से शांतिपूर्ण उपयोग करने के बारे में क्यों नहीं अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इसका उत्तर बहुत ही सीधा-सादा, पर कठोर है। आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार समाज के काम करने का ढंग व्यक्तियों के ढंग से भिन्न होता है। जो एक परस्पर-निर्भर करने वाले व्यक्तियों के समाज को स्वीकार हो सकता है वह एक व्यक्ति को स्वीकार नहीं हो सकता है। यह देखा गया है कि एक अकेले काम करने वाला व्यक्ति करों की निम्न दर स्वीकार करता है वजाय उस स्थिति के जिसमें वही व्यक्ति परस्पर-निर्भर करने वाले समाज का एक सदस्य हो। पारिवारिक व्यक्तियों की अपेक्षा कुआरों में बचत की प्रवृत्ति कम होती है। विधिवत् देखा जाय तो समय की प्राथमिकता की सामाजिक दर (जो परस्पर-निर्भर करने वाले समाज का एक व्यक्ति आज उपभोग के एक यूनिट को छोड़ने के लिए) 'ब्याज के भुगतान' के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार है। अर्थात्, सभी व्यक्ति आज ही उपभोग करना चाहते हैं, कल के लिए कोई प्रतीक्षा करना नहीं चाहता। किन्तु यदि उनसे यह कहा जाय कि वे आज उपभोग के लिए ५ रुपये और कल उपभोग के लिए ५-२५ रुपये में से किसे पसन्द करेंगे, तो वे ५-२५ रुपये के पक्ष में सहमत हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी समय की प्राथमिकता होगी (५-२५— ५-०) ÷ ५-० = ५ प्रतिशत) आमतौर पर व्याज की दर बाजार दर से नीची है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विनियोग परियोजनाएं बाजार द्वारा अस्वीकृत कर दी जायंगी, किन्तु समाज के हित में यह विनियोग करना सरकार के लिए पूर्णतया युक्तियुक्त होगा। अतः जो परियोजनाएं बम्बई शेयर बाजार द्वारा अलाभकारी और सीमित दायरे वाली कह कर ठुकरा दी जायंगी, वे समाज की दृष्टि से लाभकारी हो सकती हैं। इसलिए इस प्रकार की योजनाओं को पहले सरकार को अपने हाथ में लेना चाहिए और बाद में उन्हें चालू रखने के लिए निजी क्षेत्र के विनियोजकों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए अर्थात् हम केवल शान्तिपूर्ण उपयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की ही अपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसी स्थिति में, विनियोग के मापदण्ड का निर्णय व्याज की बाजार दर से होगा, जिसके कारण इनमें से अधिकांश विनियोग अस्वीकृत हो जायंगे। दूसरी ओर यदि इन परियोजनाओं को प्रतिरक्षा मूलक आधार पर चलाया जाय, तो हमारे मापदंड का निर्णय समय की प्राथमिकता की सामाजिक दर से होगा, जो इन परियोजनाओं को व्यावहारिक मान कर तत्काल स्वीकार कर लेगी।

यह मान लेने पर कि प्रतिरक्षा परियोजनाएं तथा आणविक अस्त्रों का निर्माण समाज के आर्थिक विकास के हित में प्रारम्भ होना चाहिए, 'तत्काल निम्न प्रश्न खड़े हो जाते हैं— (१) १९६९-७४ (चतुर्थ योजना के काल में) भारत का प्रतिरक्षा बजट कितना होगा ? (२) उसका निर्धारण किस प्रकार किया जायगा। ? (३) प्रयत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विकास लाभ क्या है ?

प्रतिरक्षा बजट में 'सुरक्षा का मार्जिन'

प्रतिरक्षा बजट का स्तर 'सुरक्षा के मार्जिन' के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए। इसे स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत है—किसी ढांचे की, जो मान लीजिए—अ टन प्रति वर्ग सेंटीमीटर का भार उठा सके, डिजाइन तैयार करने में इंजीनियर प्रायः मार्जिन रखते हैं'। इस प्रकार जो अन्तिम डिजाइन बनेगी वह कुछ अधिक संख्या, अर्थात् अ टन ५ टन वर्ग सेंटीमीटर का भार उठा सकेगी। इस '५' को वे सुरक्षा का खंड (फैक्टर) कहते हैं। वास्तविक भार के बारे में जितनी अधिक अनिश्चितता होगी, सुरक्षा का खंड उतना ही बड़ा रखा जायगा। इसी प्रकार प्रतिरक्षा बजट में सुरक्षा के मार्जिन की व्यवस्था की जानी चाहिए। सैनिक खतरों की अनिश्चितता जितनी अधिक हो, मार्जिन उतना ही बड़ा होना चाहिए। जैसा कि इंजीनियरों के मामले में है। अधिकतम मार्जिन अंतरराष्ट्रीय अनुभव के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए। भारत के लिए यह मार्जिन क्या हो, यह हमें निकालना होगा और अन्तरराष्ट्रीय अनुभव के आधार पर यह सुझाना चाहिए कि भारत के प्रतिरक्षा बजट की राशि अधिक से अधिक कितनी हो ?

मान लीजिए, जिस देश का प्रतिरक्षा बजट 'क' है। यह भी मान लीजिए कि न्यूनतम बजट 'ख' है जिसके अन्तर्गत कोई भी विदेश देश छोटी सशस्त्र सेना रख सकता है, जो नक्सलबाड़ी की तरह होने वाले आन्तरिक विद्रोह को कुचल सके। (यह प्रायः 'क' के १६ प्रतिशत के बराबर है) बाहरी आक्रमणों का मुकाबला करने के लिए हम यह मान कर चलते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सैनिक टुकड़ी उस देश में रहेगी जो उसके खर्च के लिए उसी प्रकार योगदान करता है जिस प्रकार वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सैनिक कारवाईयों के लिए करता है। इस राशि को 'ग' कह सकते हैं।

न्यूनतम अनिवार्य राशि से अधिक रकम जो किसी देश द्वारा खर्च की जाती है वह बराबर होती है क-ख-ग और उसे प्रतिरक्षा कार्यक्रम की सुरक्षा का मार्जिन कहा जा सकता है। विशुद्ध राष्ट्रीय (ए० एन० पी०) के प्रतिशत में इसे इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है- १००अ (क-ख-ग)÷एन० एन० पी०। इस आंकड़े से हम यह जान सकते हैं कि कोई देश अपनी प्रतिरोध क्षमता बनाये रखने के लिए प्रतिरक्षा की मद पर कितना आन्तरिक व्यय कर रहा है। निम्न तालिका* से हमें अंतरराष्ट्रीय प्रमाणों की जानकारी मिलती है।

विभिन्न देशों में सुरक्षा का मार्जिन

आंकड़े अमरीकी डालरों में (१० लाख)

देश	वर्ष	प्रतिरक्षा बजट क	न्यूनतम बजट ख	स० रा० सं० का योगदान	सुरक्षा का मार्जिन कालम (३) कालम (४) कालम (५) राष्ट्रीय आय का प्रतिशत
भारत	१९६६-६७	१,३३०	२४६	३५६	२.५
चीन	१९६४	७,०१०	८३३	१,३८५	५.४
अमरीका	१९६४-६५	५१,४६७	८,५७८	६,१३२	५.४
रूस	१९६२	२०,२२२	७,०००	२,८६७	४.०
इजराइल	१९६४-६५	३८८	४८	३३	९.०
संयुक्त अरब गणराज्य	१९६४-६५	३०६	६१	४४	३.६

*कालम (४) प्रत्येक सरकार के प्रतिरक्षा बजट को जो अमरीकी डालर की सम दरों पर तैयार किये गये हैं, १६ प्रतिशत अनुमानित किया गया है। कालम (३) सरकारी विनिमय मूल्यों में हैं। कालम (५) दो खरब दस खरब डालर के अनुमानित बजट पर आधारित है, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के भुगतान सम्बन्धी वर्तमान स्वरूप के अनुसार विभाजित है। अन्य विवरण के लिए देखें ईबेनाइट और एच० ल्यूबेल रचित 'द वर्ल्ड बर्डन आफ नेशनल डिफेंस' बेनाइट की 'डिसआरमामेन्ट एण्ड वर्ल्ड इकानाभिक इंडिपेन्डेन्स', कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस (१९६७) पृष्ठ संख्या ३७-५५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तालिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्तरराष्ट्रीय मानदण्डों की दृष्टि से, भारत सुरक्षा का पर्याप्त मार्जिन नहीं रख रहा है। हमरा मुख्य विरोधी चीन हमारे से ११७ प्रतिशत बड़ा मार्जिन रखता है। भारत को अपना न्यूनतम मार्जिन चीन के मार्जिन के बराबर अथवा कुछ कम ५.० प्रतिशत ही रखना चाहिए। न्यूनतम वांछनीय मार्जिन बनाये रखने के लिए भारत के प्रतिरक्षा बजट में आगामी पांच वर्षों (१९६९-७४) में २५ प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से वृद्धि होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिरक्षा के लिए प्रतिवर्ष तीन अरब रुपये की अतिरिक्त व्यवस्था की जानी चाहिए। १९७४ के बाद, प्रतिरक्षा बजट में और बातें बराबर होते हुए संकुल राष्ट्रीय उत्पादन (जी० एन० पी०) के विकास की दर से वृद्धि हो सकती है।

प्रतिवर्ष इन अतिरिक्त तीन अरब रुपये में से, आधी राशि आणविक अस्त्रों के उत्पादन पर खर्च की जानी चाहिए और शेष एक अरब ५० करोड़ रुपया परम्परागत सेनाओं के आधुनिकीकरण, वेतन वृद्धि आदि पर व्यय किया जाना चाहिए।

आणविक अस्त्रों का प्रामाणिक कार्यक्रम

आणविक अस्त्रों के प्रामाणिक कार्यक्रम के अन्तर्गत आणविक विस्फोटकों से युक्त २,००० मील तक मार करने वाले प्रत्येक प्रक्षेपणास्त्र (आई० आर० बी० एम०) की लागत ४.५ करोड़ बैठेगी। अतः १०० प्रक्षेपणास्त्रों की लागत लगभग चार अरब ५० करोड़ रुपये होगी। अन्तरमहाद्वीप प्रक्षेपणास्त्रों (आई. सी. बी. एम.) के विकास, प्रक्षेपण-स्थल के आधुनिकीकरण थोरियम का उपयोग कर उससे हाईड्रोजन बम बनाने आदि कार्यों पर तीन अरब रुपये और खर्च किये जा सकते हैं। इस प्रकार आणविक अस्त्र कार्यक्रम और उसके अनुसंधान तथा भावी विकास के लिए ७५० करोड़ रुपये का व्यय होगा। भारत में तकनीकी क्षमता और प्रतिभा है और आवश्यकता है, तो केवल आत्मबल की। यदि ७५० करोड़ रुपये को पांच वर्ष में व्यय किया जाय, अर्थात् प्रतिवर्ष एक अरब ५० करोड़ रुपये, तो यह खर्च हमारी प्रतिरक्षा की मदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से भलीभांति किया जा सकता है। निम्नलिखित तालिका में आणविक अस्त्रों की लागत का विवरण दिया गया है।

भारत के लिए आणविक आक्रमण निवारक की लागत

१०० आणविक अस्त्रों से युक्त १५०० समुद्री मील के प्रक्षेपणास्त्र

लागत का स्रोत	लागत (करोड़ रुपयों में)
१ – आणविक बम	१८.००
२ – प्रक्षेपणास्त्र	४२४
जिसकी विकास लागत	६१.००
सिस्टम कास्ट (टेस्ट एण्ड डिजाइन)	२७०.००
प्रोपेलेन्ट	३.००
वाहन	६०.००
गाईडेन्स	५.००
टी-एट्री बाडी	५.००
डिप्लायमेंट	२०.००
३ – वारहेड्स फिट करने की लागत	८.००
४ – हाईड्रोजन बम आदि के विकास और अनुसंधान के लिए	३००.००
कुल खर्च	७५०.००

उक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि यदि हम आणविक अस्त्र निर्माण की पंचवर्षीय योजना बनाते, तो चीन के विरुद्ध नयी दिल्ली स्थित आणविक प्रहार निवारक को बनाने में हमारे परिवर्तन प्रतिरक्षा बजट के ८ प्रतिशत से भी कम खर्च बैठता है। चूंकि हम १५००-२००० समुद्री मील के प्रक्षेपणास्त्र बनायेंगे, निवारक शक्ति का प्रभाव बहुत ही उल्लेखनीय होगा जैसा कि निम्न तथ्यों से स्पष्ट है।

भारत से चीनी नगरों की दूरी इस प्रकार है: अनशान २,२०० मील (इस्पात), चूंगकिंग १,३०० (केमिकल्स, शहरी केन्द्र), हांगकाऊ १७५० मील, (शहरी केन्द्र) लानचाऊ १४५० मील, (तेल) मुकडन २,५०० मील (तेल) और शंघाई २,१५० मील (बन्दरगाह व्यापार)।

इस बात की भी पूरी संभावना है कि इस प्रकार का कार्यक्रम

*पंक्ति (१) डा० होमी भाभा। (२) होरलैंड, जे० एण्ड जे० बी० टीपल (बेन्डिक्स कारपोरेशन) दी इकानामिक्स आफ रिजनल आर्म्स रेसेज ई वेनाइट में, उक्त उल्लिखित, पृष्ठ १४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक विकास के लिए लाभकारी होगा, क्योंकि इन दिनों भारत में आर्थिक मंदी का दौर चल रहा है। आणविक अस्त्र से हमारे वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन और इस बात का अवसर होगा कि वे आणविक शक्ति और एलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में नये वैज्ञानिक सत्यों की खोज कर सकें, जिनका बाद में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने में उपयोग किया जा सकता है।

प्रतिरक्षा के लिए तीन अरब रुपये की इस अतिरिक्त राशि और उसके कुछ अंश की विदेशी मुद्रा में व्यवस्था करना कहां तक सम्भव है, इसके बारे में प्रायः शंका प्रकट की जाती है। देश को अपने अस्तित्व के लिए इस राशि की व्यवस्था करनी ही होगी और इसलिए यह प्रश्न बिल्कुल असंगत है। फिर भी, मैं यह जानता हूं कि ये अनुमानित आंकड़े वर्तमान मूल्यों पर आधारित है और वर्तमान मूल्यों के अनुसार ३०,००० रुपये के एन० एन० पी० में प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत की वृद्धि होती है। अर्थात् इससे देश की आय में प्रतिवर्ष १५ अरब रुपये बढ़ते हैं। यदि इस अतिरिक्त आय का १० प्रतिशत प्रतिवर्ष प्रतिरक्षा के लिए निकाल दिया जाय, तो एक अरब ५० करोड़ रुपये उपलब्ध हो सकते हैं। शेष एक अरब ५० करोड़ रुपये की राशि वित्तीय और आर्थिक नीतियों के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

अब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि इस प्रतिरक्षा व्यय से देश के आर्थिक विकास में क्या सहायता मिलती है? निम्नलिखित तालिका* में इस स्तिथि को स्पष्ट किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्द्धित प्रतिरक्षा बजट के आर्थिक परिणाम

क्षेत्र	श्रम उत्पादन गुणांक (मनुष्य के काम के घंटे १० लाख रु०)	उत्पादन गुणक (१० लाख रु० मांग के बढ़ने से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वृद्धि)	प्रतिरक्षा बजट का निर्धारण १० लाख रु० आणविक अस्त्रों पर	आधुनिकीकरण पर
१	२	३	४	५
धातु उत्पाद	४९३.०२	१.५६०८	३७७.१	२४३
बिजली के उपकरण (इलैक्ट्रानिक्स सहित)	७५.८७	१.६३६६	८९२.४	५७५
उपकरण जो बिजली के नहीं हैं	९४.६०	१.२४११	३२५.८	२१०
परिवहन उपकरण	१०३.४८	१.५२९५	२१५३.७	१४८८
लोहा और इस्पात	८४.२१	१.५०१९	६०.३	३९
लोहेतर वस्तुएं	५०.४६	१.७२५६	६.३	४
अन्य खनिज	३०.००	१.०९९२	४८.२	३१
पेट्रोल	१७.९३	१.६८३२	९४.५	६१
रसायन	१००.००	१.५१४५	१.४	१
निर्माण	३५६.७८	१.५७३४	५४१.४	३४८
कुल १० लाख			४५००.०	३०००

उक्त तालिका के आधार पर, प्रतिरक्षा व्यय के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पहला तो यह कि आणविक अस्त्रों पर ४ अरब ५० करोड़ रु० व्यय करने से वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और अन्य हुनर वाले कर्मचारियों के लिए पांच वर्ष (१९६९-७४) ७,०८,९६० नौकरियां उपलब्ध होंगी।

दूसरा यह कि गुणक प्रक्रिया के द्वारा पांच वर्ष में (१९६९-७४) उससे ६९१.५१ करोड़ रुपये की आय होगी।

तीसरा यह कि प्रतिरक्षा आधुनिकीकरण पर तीन अरब रुपये खर्च करने से पांच वर्ष में २००,००० नौकरियां उपलब्ध होंगी।

चौथा यह कि गुणक की प्रक्रिया द्वारा पांच वर्ष में पांच अरब रुपये की आय होगी।

उपसंहार में, यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार प्रतिरक्षा से आर्थिक विकास बहुत ही अच्छी तरह होगा। इस बात को ध्यान में रख कर कि धातु उत्पाद, बिजली उपकरण और परिवहन उपकरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्र में क्षमता से अधिक उत्पादन हो रहा है, जनमत द्वारा आणविक अस्त्रों के उत्पादन सहित आधुनिक प्रतिरक्षा कार्यक्रम की मांग निश्चित रूप से की जायगी ।

---

*कालम (१) अणु शक्ति प्रतिष्ठान की विभिन्न रिपोर्टों में दिये गये क्रय कर आंकड़ों के आधार पर है । इन आंकड़ों की निजी तौर पर जांच कर ली गयी है । कालम (२) के आंकड़े मुझे 'दिल्ली स्कूल आफ इकानामिक्स' के भारत हजारी द्वारा प्राप्त हुए । कालम (३) भारत हजारी के दिल्ली स्कूल आफ इकानामिक्स वर्किंग पेपर नं० ३३ के 'एम्पायरिकल आइडेंटीफिकेशन आफ दी की सेक्टर्स आफ दी इंडियन इकानमी' में से लिया गया है । कालम (४) और (५) कालम (१) के समान है । कालम (५) I.C.B.M. के शीघ्र चेतावनी देने की प्रणालियों और हाईड्रोजन बम के विकास के लिए है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मजदूर संघ

एक प्रकाश स्तम्भ

● एक श्रम समीक्षक

२४ दिसम्बर १९६६ को भारत सरकार ने अवकाशप्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री गजेन्द्रगडकर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय श्रम आयोग स्थापित किया। उसकी सहायता के लिए एक १२ सदस्यीय समिति बनी, जिसमें उद्योग के दोनों पक्षों के स्वतंत्र अर्थशास्त्री और विशेषज्ञ शामिल हैं। आयोग श्रम क्षेत्र की स्थिति और उसके विकास का पूर्ण अध्ययन करके सुझाव देगा, जो भविष्य के लिए सहायक सिद्ध होंगे। आयोग ने क्षेत्र और उद्योग अनुसार अध्ययन दलों का गठन किया है तथा देश के प्रायः सभी श्रम विशेषज्ञों को कार्य में लगा दिया है। इसे सभी मालिकों की संस्थाओं, केन्द्रीय और प्रदेश सरकारों के श्रमिक संघों, बहुत से संस्थानों और सम्बन्धित व्यक्तियों से अनेक ज्ञापन प्राप्त हुए हैं। इस उद्देश्य के लिए आयोग ने एक व्यापक प्रश्नपत्र बनाया है, जो कर्मचारी के कार्य, जीवन के हर पहलू, कार्य आरम्भ करने से लेकर कार्य का लाभ प्राप्त करने के समय तक को छूता है, क्योंकि श्रम-क्षेत्र में विभिन्न 'वादों' के कारण काफी मतभेद है और अलग-अलग हितों का संघर्ष चल रहा है, इसलिए आयोग के सामने हुई बहस की सामयिक भारतीय जीवन का कोई विद्यार्थी उपेक्षा नहीं कर सकता।

इस बहस के विवरण को देखते हुए मन में पहली बात यह आती है कि शायद ही किसी संस्था ने आयोग के हर प्रश्न का उत्तर दिया हो। बहुतों ने कठिन प्रश्नों का अस्पष्ट उत्तर दिया। केवल तीन संस्थाओं ने प्रायः सभी प्रश्नों का उत्तर देने का अच्छा प्रयास किया है।

१. भारत सरकार

२. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी

३. भारतीय मजदूर संघ

इन तीन में से, भारत सरकार के उत्तरों से तो केवल पृष्ठभूमि की सामग्री मिलती है, हल नहीं। बल्कि इससे जटिलता अधिक हो जाती है। टाटाओं ने संक्षेप में यह बताया है कि वह इन समस्याओं से अपनी संस्थाओं में कैसे निबटते हैं। उनके उत्तरों से लगता है कि वह पश्चिम में विकसित प्रबन्ध विज्ञान का अच्छा उपयोग करते हैं। मगर सामान्य हित के प्रश्नों पर उन्होंने खामोश रहना ही पसंद किया है। जैसे सामूहिक लेन-देन के सम्बन्ध में उन्होंने केवल एक वाक्य में उत्तर दिया है कि 'यह प्रश्न सामान्य प्रकार के हैं।' बहुत से मामलों में उनके उत्तर शुद्ध रूप से पूंजीवादी पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके विपरीत भारतीय मजदूर संघ ने हर बात पर पूर्ण विचार किया है। एक ठोस उदाहरण जैसे 'मजदूरी' की समस्या को लेकर इस बात को सिद्ध किया जा सकता है।

प्रश्नपत्र में मजदूरी पर ३५ प्रश्न हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

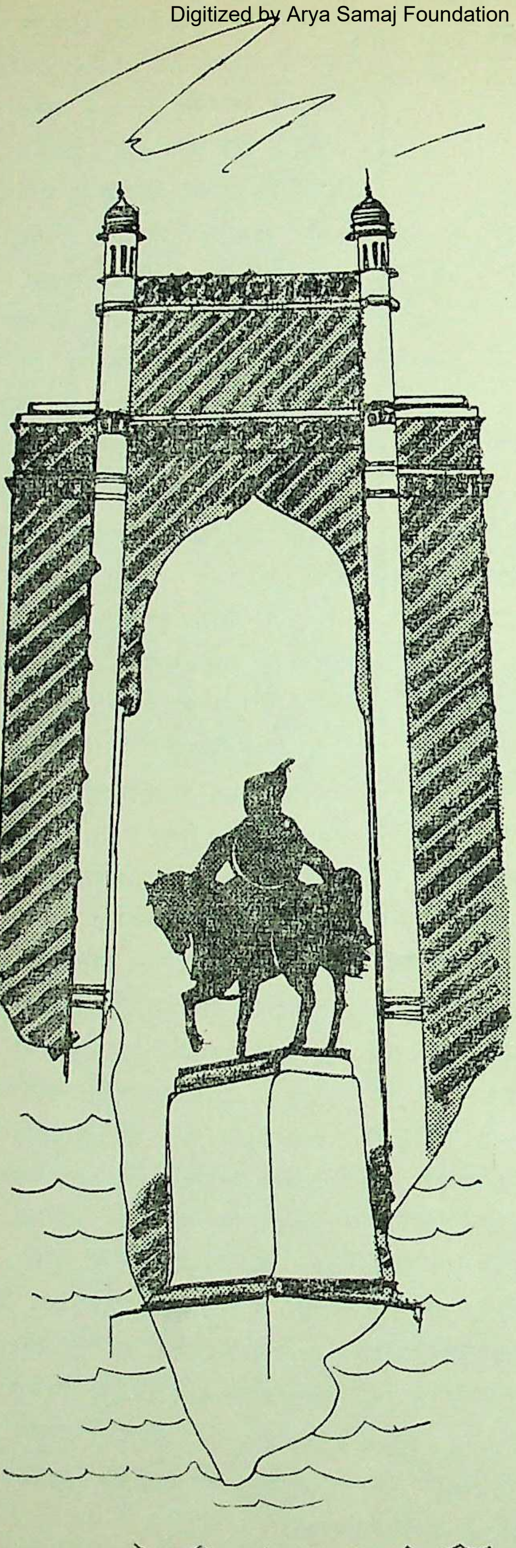

चार भूमिका के रूप में हैं, सात निम्नतम मजदूरी के सम्बन्ध में, छः महंगाई भत्ते, दो-दो सीमावर्ती लाभ और मजदूरी—चार मजदूरी निश्चित करने, चार मजदूरी नीति, तीन मजदूरी अदायगी के ढंग और तीन प्रश्न सामान्य विषयों के सम्बन्ध में थे। मजदूरी नीति के सम्बन्ध में पहले दो प्रश्न इस प्रकार थे :—

१५५ : (क) मजदूरी निश्चित करने में श्रम के प्रति औचित्य, उद्योग के विकास, पूंजी निर्माण और उद्योगपति के लाभ आदि के मापदण्ड का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।

(ख) कहा जाता है कि मजदूरों की उचित मजदूरी, मालिकों के उचित लाभ और सरकार के उचित लाभ के बीच सन्तुलन रखने पर उपभोक्ता पीछे रह जाता है। यह आलोचना कहां तक ठीक है ? कहां तक इस स्थिति को सुधारा जा सकता है ?

१५६ : आयोजित विकास के संदर्भ में मजदूरी, आय और मूल्यों के प्रश्न पर जोर दिया जाता है। इस प्रकार की नीति का लक्ष्य और महत्व क्या होना चाहिए ? अर्थ-व्यवस्था के सम्भावित विकास के प्रकाश में आर्थिक नीति की निर्देशक रूपरेखा बताइए। इस प्रकार की अर्थ-नीति को लागू करने के लिए वर्तमान संघटनात्मक प्रबन्धों में आवश्यक परिवर्तनों का भी संकेत दें।

इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के विभिन्न आर्थिक संस्थाओं ने जो उत्तर दिये हैं उनमें भारतीय मजदूर संघ के उत्तर अपना अलग महत्व रखते हैं।

टाटाओं के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बन सकता। मगर उद्योग की आवश्यकताओं और पूंजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लाभ का आश्वासन होना चाहिए। शेष उत्तर में मजदूरी नियन्त्रण, सरकारी नियंत्रण से मुक्ति, पूंजी निर्माण के लिए प्रोत्साहन और उपभोग पर रोक आदि की लम्बी व्याख्या की गई है।

भारत सरकार ने मुख्य प्रश्न को टाल कर उत्तर के रूप में केवल उत्पादन क्षमता प्रस्तुत की है। मगर साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया है कि उत्पादन क्षमता को मापने के लिए भारत में पर्याप्त प्रयास नहीं हुए हैं। श्रम ब्यूरो ने जो आंकड़े दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि सभी उद्योगों में उत्पादन बढ़ा है, मगर वास्तविक मजदूरी घट गई है। सरकार यह मानती है कि उत्पादन की वृद्धि मालिकों और कर्मचारियों के बीच सहयोग से ही प्राप्त होगी। इस प्रकार सरकारी उत्तर में केवल अस्पष्टता और हैरानी ही की अभिव्यक्ति होती है।

नारों के चक्कर में

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के उत्तर नितान्त अपूर्ण और ईमानदारी रहित हैं। इन्टक ने केवल प्रचारात्मक रुख अपनाया है, जिसका सार है 'किसी प्रकार हमें अधिक मजदूरी दो'? उसके अनुसार उद्योग के विकास पर किसी भी रूप में मजदूरी से पहले विचार नहीं होना चाहिए और यह गलत है कि विभिन्न विरोधी हितों के बीच उपभोक्ता के हित पीछे रह जाते हैं। आयोजन के बारे में इंटक के विचार में कुछ भी ठीक नहीं है और पुनः विचार की आवश्यकता है। मर्ज की दवा के रूप में उसने इस बात को दोहराया है कि एकाधिकार समाप्त हो जाने चाहिएं और मजदूरों को प्रबन्ध में अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय। एक उच्चस्तरीय आयोग के सामने केवल नारों को दोहरा कर यही सिद्ध किया है कि जिन सरकारी असफलताओं को इंटक ने गिनाया है वह स्वयं उस संस्था पर भी लागू होती हैं।

हिंद मजदूर सभा से सम्बद्ध मिल मजदूर सभा ने इन प्रश्नों को छुआ है। उसके उत्तरों का सार यह है कि मजदूरी नीति में प्राथमिकता निश्चित करने का आधार वह सामाजिक-आर्थिक दर्शन है, जो स्वीकार किया गया हो। मगर इस संघ ने अपने सामाजिक, आर्थिक दर्शन की व्याख्या नहीं की है। इसके विपरीत उसके अनुसार कोई सैद्धान्तिक या नीति रूपरेखा संभव नहीं क्योंकि जो भी मान्यताएं जिन पर कोई रूपरेखा प्रस्तुत की जायगी सापेक्ष होगी और विभिन्न तत्वों की व्याख्या करने में कठिनाई के कारण कोई अखिल भारतीय नीति निर्धारित नहीं की जा सकेगी। हिन्द मजदूर सभा के विचारों का सार यही है कि सरकार में किसी प्रकार का नियन्त्रण रखने की क्षमता नहीं है और सरकार समर्थित मालिकों के इस कुप्रचार को नंगा करना चाहिए जो उन्होंने उपभोक्ता के हितों का बहाना बना कर खड़ा किया है।

यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने केवल अपने उत्तर को समाजवादीकरण के उद्देश्य से जोड़ा है। उसके अनुसार उद्योगों में तब तक विषमता, जनता में संकट भावना और क्षोभ रहेगा जब तक मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण नहीं हो जाता। उचित मजदूरी पहली शर्त है और उद्योग के विकास को भी प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

यह विचित्र बात है कि हिन्द मजदूर पंचायत ने अधिक यथार्थवादी रुख अपनाया है। बेकारों के नाम पर उसने उद्योगों के विकास की आवश्यकता को स्वीकार किया है और उसके अनुसार इस उद्देश्य के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य दावेदारों को कुछ कठिनाई तो उठानी ही पड़ेगी। मगर उसने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है कि आय के वितरण की नीति को जीवन के समस्त पहलुओं को देख कर न कि केवल आर्थिक तत्वों के आधार पर निर्धारित करना होगा।

उद्योगपतियों का प्रश्न

इंडियन फेडरेशन आफ इंडिपेंडेंट ट्रेड यूनियन्स ने केवल यह कहा है कि उद्योगों के विकास आदि का प्रश्न मजदूर संघों का प्रश्न है ही नहीं। श्रमिक केवल अधिक मजदूरी प्राप्त करने में रुचि रखता है और उक्त प्रश्नों का उत्तर उद्योगपतियों या उसी प्रकार की संस्थाओं को देना चाहिए। इसी प्रकार आय और मूल्यों पर समन्वित दृष्टिकोण सरकार का कार्य है।

प्राय: सभी सरकारी उद्योग संस्थाओं ने इन प्रश्नों को टाल दिया है। हिन्दुस्तान एण्टीबायटिक्स और नेशनल कोल डेवलपमेंट कारपोरेशन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उन्हें कुछ भी नहीं कहना है, क्योंकि इन जटिल प्रश्नों पर केवल विशेषज्ञों का दल ही विचार कर सकता है। विभिन्न बन्दरगाह अधिकारियों के अनुसार उद्योग की क्षमता ही मजदूरी का मापदण्ड होना चाहिए। एयर इंडिया के अनुसार मूल्य रेखा को स्थिर करने से पहले दूसरी बातों पर सोचना व्यर्थ है। हिन्दुस्तान स्टील के अनुसार मजदूरी नीति से उचित आर्थिक विकास का आश्वासन मिलना चाहिए। भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स के विचार से हर प्रकार के हितों में साम्य स्थापित करने वाला स्वर्ण नियम निकालना चाहिए। मगर उनके पास ऐसा कोई नियम नहीं है। इंडियन मिंट ने प्रश्न पर अधिक व्यापक रूप में विचार करने की जरूरत बताते हुए छुट्टी पा ली है। स्टेट बैंक के अनुसार आर्थिक नीति के व्यापक सन्दर्भ में विभिन्न उद्योगों के लिए अलग-अलग माप रखने चाहिए। रांची के हैवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन ने यह महसूस किया है कि मजदूरी की गिरती हुई चाल को रोकने के लिए कोई हल निकाला जाना चाहिए। इसके अनुसार सरकारी और सहकारी उद्योगों का विकास होना चाहिए और हर हालत में राष्ट्रीय आय का निश्चय करना चाहिए।

निजी क्षेत्र ने बिना किसी हिचकिचाहट के पूंजी निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया है। अनेक ज्ञापनों में से किसी ने इन प्रश्नों पर विस्तार से विचार नहीं किया है। उन्होंने आग्रह किया है कि राष्ट्रीय विकास के लिए पूंजी निर्माण होना चाहिए और पूंजी पर लाभ अत्याधिक पूंजी पर आधारित आधुनिक उद्योग के लिए आकर्षक होना जरूरी है। उन्होंने प्रबन्ध क्षमता बनाये रखने के लिए प्रबन्धकों को अच्छा वेतन देने का समर्थन किया है। कुछ ने तो इस आधार पर इस प्रश्न को हंसी में उड़ाया है कि यदि कोई मजदूरी और आय नीति बन भी गई, तो उसे कार्यान्वित करने की न तो किसी में दृढ़ता है और न इच्छा ही।

इस पृष्ठभूमि में भारतीय मजदूर संघ का ज्ञापन प्रभावशाली वक्तव्य है। इसमें ४१६ पृष्ठ हैं, जिनको चार भागों में बांटा गया है। **पहला भाग प्रतिदिन के औद्योगिक सम्बन्धों, दूसरा आर्थिक मामलों, तीसरा भाग सामाजिक जीवन पर औद्योगीकरण के प्रभाव और चौथा भाग क्रमशः मजदूर संघों और सरकार के कार्यों तथा भारतीय सामाजिक, आर्थिक पद्धति के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं।** दूसरे भाग में ही मजदूरी और मजदूरी नीति का अध्याय सम्मिलित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। इसमें अन्य दलों की तरह केवल मात्र विषय की जटिलता को ही स्वीकार करके नहीं छोड़ा गया है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन

भारतीय मजदूर संघ ने अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अनुरूप मजदूरी पर व्यापक और समन्वित नीति प्रस्तुत की है। भारतीय जनसंख्या और उसके विभिन्न आर्थिक कार्यों का विश्लेषण करते हुए उसकी तुलना विश्व के अन्य देशों से की गई है तथा वास्तविक नीति को आंकड़ों सहित सामने लाया गया है। इसके बाद आर्थिक विकास के नियम को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है और पूंजीपति तथा पूंजी निर्माण का अंतर प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

भारतीय मजदूर संघ हर स्थान पर पूंजीपति को मजदूर की भांति ही एक साधारण मनुष्य मानता है। उसे खतरा मोल लेने और उत्तम योग्यता के लिए उचित स्थान दिया गया है। मगर इसका मतलब यह नहीं कि उसे मजदूरी या आय विभेदकों और पद विभेदकों की परिधि से बाहर रखा जाय, जिसके लिए संघ ने एक राष्ट्रीय नीति का विकास किया है। उस पूंजी को जिसे उद्योग में लगाया गया हो, उद्योग परिवार के प्रबन्ध क्षेत्र में लाया गया है और उसे राष्ट्रीय आयोजन के एक मार्ग के रूप में उपलब्ध कराया गया है। इस आधार पर अंतरराष्ट्रीय श्रम संस्था द्वारा समर्थित अधिक उत्पादक कार्य की नीति बनाई गई है। तब अधिक नौकरियां देने वाली योजना की आवश्यकताओं को ध्यान पूर्वक सामने लाया गया है। औद्योगीकरण के सिलसिले में स्वामित्व के प्रश्न पर भारतीय मजदूर संघ की नीति गोखले स्कूल आफ इकनामिक्स एण्ड पोलटिक्स के निदेशक द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत के समान है। उपभोक्ता के हित और सरकार के कार्य पर विचार करते हुए एक अधिक कार्य निकालने वाली योजना की प्राथमिकताओं पर बहस समाप्त हुई है।

ऐसा करते हुए भारतीय मजदूर संघ ने बहुत से सामाजिक-आर्थिक सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं जिन पर विशेष विचार की जरूरत है। इसकी मान्यता है कि पूंजी के फैलाव के ढंग से ही पूंजी बचाने की प्रवृत्ति के उत्साह की मात्रा प्रभावित होती है। इसी प्रकार इसने राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरी व्यवहार और निर्णय करने की प्रणाली के बीच जो सम्बन्ध स्थापित किया है वह बिल्कुल उपयुक्त है। भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तावित योजना के प्रारूप में यह विशेषता है कि वह मूल्य पद्धति से प्रभावित होता है, जिसमें उपांतस्थ उद्योग संस्थाएं नीति निर्धारण में बैरोमीटर का काम करती हैं और जिसमें एक तकनीकी सन्तुलन से उच्चतर तकनीकी सन्तुलन में जाने की क्षमता है। भारतीय मजदूर संघ द्वारा प्रस्तावित सम-उपांतस्थ-प्रतिफल सिद्धांत आर्थिक विचारधारा की एक उपलब्धि है। भारतीय मजदूर संघ ने दिखाया है कि जमा पूंजी की निश्चित मात्रा में किस प्रकार राष्ट्रीय नीति चार तत्वों पर आधारित रह सकती है, जो इस प्रकार है : **(१) उपभोग का आरम्भिक स्तर (२) आयोजना क्षितिज (३) योजना अवधि में उपभोग की वृद्धि (४) आवधिक अवस्थाएं।**

इस आधार पर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं पर एक आवश्यक कृति 'श्रम नीति' के नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होगी। आज जबकि आर्थिक आकाश पर काले बादल छाये हुए हैं, 'श्रम नीति' एक महान आशा का संदेश है। ○ ○

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत और राष्ट्रमण्डल

● डा० गिरिजा के० मुखर्जी

राष्ट्रमण्डल में रहने के भारत के निर्णय के बारे में अभी तक कुछ रहस्य दिखायी देता है, क्योंकि न तो संविधान परिषद और न ही लोकसभा में हुई बहस से यह स्पष्ट पता चलता है कि भारत को राष्ट्रमंडल में रहना चाहिए। ऐसा निर्णय कब और किसने किया ? क्रिप्स मिशन ने असंदिग्ध और स्वतन्त्रतापूर्वक यह पसन्द कांग्रेस नेताओं पर छोड़ दी थी और स्वयं कांग्रेस कार्यसमिति ने इस प्रश्न पर इस ढंग से विचार नहीं किया कि निर्णय मतों के आधार पर किया जा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वसम्मत राय के सिद्धान्त से हमारे राष्ट्रीय नेताओं को प्रेरणा मिली और जान पड़ता है कि हमारे संविधान के निर्माता भी इस सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री नेहरू द्वारा प्रभावित और बाध्य किये गये। वस्तुतः यह विचार श्री नेहरू का था कि भारत राष्ट्रमंडल में रहे और इस सम्बन्ध में जो तत्कालीन रिकार्ड मैंने देखा है उससे यह पता चलता है कि न तो माउन्टबेटन और न ही सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने स्वतः कभी यह सुझाव दिया कि भारत को राष्ट्रमंडल में रहना चाहिए। उन्हें इस बात की झिझक क्यों थी, यह समझना आसान है, क्योंकि साम्राज्य को राष्ट्रमंडल के रूप में परिवर्तित करने का विचार उनका अपना नहीं था और इसके अतिरिक्त, यह एक ऐसा नया विचार था, जिससे ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ अधिक परिचित नहीं थे। यह समझने के लिए कि ऐसा निर्णय श्री नेहरू ने क्यों किया, हमें इस बात का विश्लेषण करना होगा कि अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के पूर्व उनका सोचने का ढंग किस प्रकार का था।

किन्तु, ऐसा करने के पूर्व यह अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि महात्मा गांधी सहित श्री जवाहरलाल नेहरू ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें इस बात की कुछ जानकारी थी कि जब ब्रिटेन ने भारत को स्वतन्त्रता देने का प्रस्ताव रखा, उस समय एशिया में कौन-सी अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां कार्यरत थीं। मुझे यह भी बताना चाहिए कि सुभाष बोस को भी इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी रही होगी। इनके अतिरिक्त भारत में अन्य किसी भी व्यक्ति को लेशमात्र भी यह पता नहीं था कि ब्रिटेन अपनी तथाकथित विजय के पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत पर से अपना अधिकार छोड़ने के लिए इतना उत्सुक क्यों था ? भारतीय राजनीतिक नेताओं के, जिनमें से अधिकांश देहाती क्षेत्रों के थे और केवल स्थानीय राजनीति में ही रुचि रखते थे, पास भी इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के अत्यन्त सीमित साधन थे कि १९४५ के युद्ध विराम के पश्चात् कौन-सी शक्तियां युद्धोत्तर विश्व का निर्माण करने में लगी हुई हैं। विश्व सत्ता के स्वरूप में परिवर्तन से, जो उन दिनों प्रकट होने ही वाला था, भारतीय राजनीतिज्ञ अपरिचित थे। श्री नेहरू को अवश्य परिचय था, किन्तु जैसा कि एम० एन० राय का कथन है, उन्हें भी आधा ही परिचय था, क्योंकि एक तो-उन्हें फासिज्म विरोधी निश्चित विचार रखने की बाधा थी और दूसरे सभी राजनीतिक और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं को अंग्रेजी ढंग से देखते थे। निस्संदेह वह यह जानते थे कि सोवियत संघ की सैनिक सहायता से धुरी राष्ट्रों की पराजय ने विश्व के शक्ति-सन्तुलन में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है, किन्तु फिर भी वे भारत को राष्ट्रमंडल में रखने के पक्ष में क्यों थे, इसका पहला कारण तो, यह है कि उस समय भी उन्हें विश्वास था कि ब्रिटेन अपनी स्थिति सुधार लेगा और विश्व मामलों में नेतृत्व करेगा। उनके इस निष्कर्ष पर पहुंचने का एक कारण तो, यह था कि उन्हें अमेरिका के सम्बन्ध में जानकारी नहीं थी और दूसरा, उनका इस तथ्य को भूलना था कि ब्रिटेन ने नहीं, वास्तव में अमेरिका ने युद्ध को जीता है। निस्संदेह श्री नेहरू को यह स्पष्ट आभास हो गया था कि सोवियत संघ की स्थिति महत्वपूर्ण होने वाली है और ऐसा इसलिए हुआ कि सोवियत उद्देश्य के प्रति उनकी सहानुभूति थी। सोवियत सैनिकों की लड़ने की अद्‌भुत क्षमता ने भी उन्हें बहुत प्रभावित किया था, किन्तु संभवतः व्यक्तिगत कारणों से और इस तथ्य के कारण कि उन्होंने अमेरिका के सम्बन्ध में अपने-आपको भली-भांति परिचित नहीं किया था, वे १९५० के पूर्वार्द्ध तक इस बात से अनभिज्ञ बने रहे कि विश्व-मामलों में अमेरिका का स्थान महत्व-पूर्ण होने वाला है।

सारी जानकारी का अभाव

अमेरिका की नयी प्रभावशाली भूमिका का कम मूल्यांकन करने के कारण श्री नेहरू एक तो पाक-अमेरिका सैनिक गठबन्धन की ओर ध्यान नहीं दे पाये और दूसरा, उन्होंने यह निश्चय किया कि भारत ब्रिटेन के साथ राष्ट्रमंडल के द्वारा जुड़ा रहेगा, यद्यपि उस समय न तो उसकी स्थापना हुई थी और न ही उसकी कोई रूप-रेखा सामने आयी थी। जो भी हो, उनका अनुमान बिल्कुल गलत नहीं था। ब्रिटेन का साम्राज्य अभी विघटित नहीं हुआ था और श्री नेहरू ने यह ठीक ही सोचा कि यदि इस साम्राज्य के लम्बे-चौड़े संगठन को एकरूपता दे दी जाय, तो वह विश्व में शान्ति बनाये रखने का माध्यम बन सकता है और द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल पश्चात् विश्व में शान्ति कायम रखता, यह १९४० के आसपास के वर्षों में विश्व के राजनेताओं के लिए सबसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अधिक चिन्ता का विषय था। उदार स्वभाव वाले व्यक्ति होने के कारण श्री नेहरू ने सोचा कि ब्रिटेन से पूर्ण सम्बन्धविच्छेद न करने की उनकी चेष्टा की ब्रिटेन द्वारा सराहना की जायगी। उन्होंने यह भी सोचा कि इस शुभ चेष्टा के फलस्वरूप ब्रिटेन राष्ट्रमंडल के आंगल-भाषी उपनिवेशों के अन्तर्गत एक आर्थिक संगठन की स्थापना करेगा और इस प्रकार विश्व में आर्थिक स्थिरता लायेगा, जिससे राष्ट्रमंडल के सदस्य देश भी अधिक लाभ उठा सकें। वस्तुतः, भारत को राष्ट्रमंडल में रखने का दूसरा कारण सचमुच आर्थिक था, क्योंकि श्री नेहरू ऐसा मानते थे कि भारत चूंकि ब्रिटेन की बैंकिंग प्रणाली तथा उद्योग और व्यापार के ब्रिटिश तौर-तरीकों से अभ्यस्त है, इसलिए उसके लिए यह उपयोगी होगा कि वह एकदम ब्रिटेन के साथ अपने सारे सम्बन्धों को न तोड़ ले, क्योंकि ऐसा करने से स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों में भारत की वित्तीय स्थिरता को बड़ा खतरा पहुंच सकता है। तीसरा कारण, जिसने राष्ट्रमंडल में रहने के लिए उन्हें प्रेरित किया था, उन भारतीय प्रवासियों का भविष्य, जो ब्रिटिश उपनिवेशों में रहते थे, क्योंकि वे यह जानते थे कि यदि भारत ब्रिटेन के राजनीतिक ढांचे से बिल्कुल अलग हो जायगा, तो इन उपनिवेशों में रहने वाले भारतीयों के सामने तत्काल यह समस्या आ खड़ी होगी कि या तो वे अपनी भारतीय वफादारी को समाप्त करने की घोषणा करें या सदैव के लिए ब्रिटेन में रहने का निश्चय करें। वह भारतीय प्रवासियों को इस प्रकार के विकल्प की स्थिति से बचाना चाहते थे, क्योंकि उनका यह मत था कि समय मिलने पर प्रवासी भारतीयों की समस्या अपने-आप ही हल हो जायगी। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि यह हल उन्हें सबसे अधिक 'सभ्य हल' जान पड़ा, जिससे दो विरोधी राष्ट्र बिना किसी कटुता के अथवा कम से कम भविष्य में बिना अधिक कटुता के एक दूसरे से अलग हो सकें।

जो भी हो, इन सब बातों से यह तथ्य प्रकाश में नहीं आ सका कि भारत से अंग्रेजों के हटने का जो कारण श्री नेहरू ने सोचा था, उससे वह बिल्कुल भिन्न था। यदि कभी भारत के वायसराय और भारतीय मामलों के सचिव के बीच हुआ गुप्त पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया जायगा, तो अवश्य ही हमें यह ज्ञात होगा कि भारत से अंग्रेजों के हटने के कारण वे नहीं थे, जो ब्रिटिश सरकार ने इंगलैंड में और भारत में सरकारी तौर पर प्रकट किये थे या जो हमारे कुछ नेता सोचा करते थे। सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया से निकट सम्बन्ध रखने वाले कुछ ब्रिटेनवासियों के प्रकाशन ने उनके बारे में हमें कुछ संकेतमात्र दिये हैं, किन्तु वी० पी० एन० मेनन जैसे भारतीय लेखकों को विवादास्पद प्रश्नों की बहुत कम जानकारी थी, और इसलिए उन्होंने बातचीत और उस समय के इतिहास के बारे में जो कुछ भी लिखा है, उसमें सम्बन्धित समस्याओं के प्रति पर्याप्त अन्तर्दृष्टि का अभाव है और इसका कारण केवल यह है कि १९४७ तक किसी भी भारतीय को, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, उन शक्तियों और प्रतिगामी शक्तियों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं थी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके कारण भारत ब्रिटेन के आधिपत्य में बना रहा । सरकारी तकनीकी शब्दावली और 'सरकारी अंग्रेजी' से अत्यधिक अभ्यस्त हमारे अधिकांश राजनीतिज्ञ और उच्च सरकारी अधिकारी सरकार की अधिकृत घोषणाओं को उनके उद्देश्य की जांच-पड़ताल किये बिना ही मान लेते थे और चूंकि उनमें से कुछ ने ब्रिटिश शासन के सम्पूर्ण स्वरूप को कभी बुनियादी तौर पर चुनौती नहीं दी, इसलिए वे ब्रिटिश शासन द्वारा दिये गये स्पष्टीकरण के रहस्य को समझ नहीं सके । किन्तु, यह बात श्री नेहरू पर अवश्य ही लागू नहीं होती, जिन्होंने अपनी कलम और वाणी द्वारा भारत के ब्रिटिश शासन के साम्राज्यवादी स्वरूप को सदैव प्रकट किया, हालांकि उन्होंने इस तथ्य पर कम प्रकाश डाला कि बुनियादी तौर पर, यह शासन सैनिक सत्ता के हाथ में था, जिसे हटाये बिना भारत स्वतन्त्र होने की आकांक्षा भी नहीं कर सकता । श्री नेहरू ने फूंक-फूंक कर कदम उठाने वाले एक अच्छे समाजवादी की भांति साम्राज्यवाद के स्वरूप के अपने विश्लेषण में उसके प्रचलित आधारों की उपेक्षा की, और यही कारण था कि ऐसे कई अंग्रेजों के प्रति, जो भारत के साथ सहानुभूति रखते जान पड़ते थे, श्री नेहरू की धारणाएं सदैव ही भ्रांतिपूर्ण हुआ करती थीं । सर स्टेफर्ड क्रिप्स जैसे व्यक्तियों के लिए भारत के प्रति सहानुभूति रखने का आशय यह नहीं था, कि वह ब्रिटेन के साथ भारत के सम्बन्धों के समूचे स्वरूप और आधार को, जो एक विजेता और विजित के रूप में थे, अस्वीकार करते थे और ब्रिटेन में भारत के ये तथाकथित मित्र, चाहे कितनी ही सदाशय प्रकृति के क्यों न रहे हों, उन्होंने भारत और ब्रिटेन की समस्या को कभी भारतीयों की भांति नहीं देखा और १९२९ में लाहौर में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता सम्बन्धी पारित प्रस्ताव में समाविष्ट सिद्धान्त को भी कभी स्वीकार नहीं किया । इस प्रस्ताव में, कांग्रेस ने अंग्रेजों और उनके द्वारा भारत पर लादी शासन प्रणाली को भारत के सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पतन के लिए दोषी ठहराया था । भारत और विदेशों में रहने वाले लाखों भारतीय १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्त होने तक, प्रतिवर्ष २६ जनवरी को इस प्रस्ताव को दोहराया करते थे और इस प्रस्ताव के प्रारूप से, जिसे श्री नेहरू ने तैयार किया था, प्रतिवर्ष २६ जनवरी को शपथ लेने वाले लोगों के मत में, इस बात का बिल्कुल भी संदेह नहीं रह गया था कि स्वतन्त्रा मिलने के बाद भारत का ब्रिटेन के साथ किसी प्रकार भी सम्बन्ध रहेगा । उन अंग्रेजों ने, जिन्होंने भारतीय मामले का समर्थन किया था, कभी प्रस्ताव में निहित भारत में अंग्रेजी शासन के स्वरूप का समर्थन नहीं किया ।

कांग्रेस क्यों बदली ?

फिर यह कैसे सम्भव हुआ कि कांग्रेस ने ब्रिटेन के साथ अपने सभी सम्बन्धविच्छेद करने के घोषित इरादों के विपरीत, तत्काल और बिना किसी प्रकार के दबाव के राष्ट्रमंडल में रहने की सहमति दे दी ? ऐसा क्यों किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गया) इसके कारण निस्सन्देह रहस्यमय हैं हालांकि नेहरू जी के सोचने के ढंग का विश्लेषण करते हुए जो तर्क मैंने दिये हैं, उससे यद्यपि इस महत्वपूर्ण विवाद पर निर्णायक मत देने का अवसर प्राप्त नहीं होता, किन्तु स्थिति अवश्य कुछ स्पष्ट हो जाती है। इस विषय से सम्बन्धित सामग्री बहुत सीमित है, क्योंकि कभी कांग्रेस अधिवेशन में इस समस्या पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया गया। प्राय: सभी अवसरों पर, नेहरू जी को निर्णय करने और जो भी वह उचित समझें वह करने का अधिकार दे दिया गया। इंगलैण्ड के प्रति नेहरू जी के पूर्व स्नेह और ब्रिटिश विचारधारा के प्रति उनकी बौद्धिक दासता ने ही उन्हें अन्य राजनीतिक प्रणालियों की अपेक्षा ब्रिटिश पद्धति को पसन्द करने के लिए अत्यधिक प्रेरित किया, किन्तु सम्भवत: इन्हीं कारणों से उन्होंने तब तक अप्रकट राष्ट्रमंडल में रहने के पक्ष में निश्चय किया, ब्रिटेन के कुछ विख्यात् लोगों का, जिनके पास उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध अच्छे थे, उन पर प्रभाव पड़ा। अन्यथा, यह समझना कठिन है कि उन्होंने इस महत्वपूर्ण प्रश्न को इतने आसान और हल्के ढंग से क्यों लिया, जबकि प्रत्येक अन्य प्रकरण में संविधान परिषद तथा संसद दोनों में उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति और अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति द्वारा निर्धारित वैधानिक और संविधानिक मर्यादाओं का पूरी नैतिकता से पालन किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटेन के राजा अथवा रानी को राष्ट्रमंडल का नाममात्र अथवा संविधानिक प्रमुख मान कर राष्ट्रमंडल के बारे में, दरअसल श्री नेहरू ने सबसे पहले विस्तारपूर्वक विचार किया। इस विचार को पसन्द करने वाले एकमात्र अन्य व्यक्ति थे, दक्षिण अफ्रीका के जनरल स्मट्स। सच देखा जाय, तो उन्होंने ही इसे सर्वप्रथम "राष्ट्रों का ब्रिटिश राष्ट्रमंडल" नाम दिया था।

कुछ भी हो, जिन वास्तविक परिस्थितियों के कारण, भारत ने तथाकथित राष्ट्रमंडल का, जिसके कर्तव्य और अधिकार क्षेत्र की अभी तक व्याख्या नहीं की गयी है, सदस्य बनने का निश्चय किया, वे एक लम्बे समय तक रहस्यमय बनी रहेंगी। यह अभी बेहूदा जान पड़ता है कि हमने एक ऐसे संगठन में "प्रवेश किया" जो "विधिवत् निर्मित" नहीं था और जिसके "संविधान का प्रारूप" तक नहीं था। यद्यपि भारत में तथाकथित संविधानिक विधिवेत्ताओं और धर्मशास्त्र तथा अन्तरराष्ट्रीय कानून के विशेषज्ञों की संख्या बहुत अधिक है तथापि एक "अस्तित्वहीन" संगठन में हमारे "रहने" के पहलू पर इनमें से किसी का ध्यान नहीं गया। राष्ट्रमंडल पर पुस्तकें लिखी गयी हैं, लन्दन में राष्ट्रमंडल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन भी हो चुके हैं, किन्तु संविधानिक अर्थों में यह राष्ट्रमंडल क्या है, कोई भी इसे नहीं जानता। आस्ट्रेलिया के लार्ड केसी ने इसे "क्लब" बताया है जबकि अन्य व्यक्तियों ने इसे "विचारों का मिलन स्थल", एक लघु संयुक्त राष्ट्रसंघ और इसी प्रकार के अन्य शब्दों से सम्बोधित किया है। कोई यह भी नहीं जानता कि इसके सम्मेलनों का कार्यक्रम किस प्रकार निश्चित किया जाता है और यद्यपि लगभग पन्द्रह वर्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके "बिना नाम के अस्तित्व" के उपरान्त अब उसके एक महासचिव—कनाडा के स्मिथ—हैं तथापि कोई यह नहीं जानता कि क्या अन्य सम्मेलन होगा और यदि होगा, तो कब होगा ? इसके अलावा, यह भी कोई नहीं जानता कि सम्मेलन में भाग लेने के लिए कौन सहमत होगा और कौन उसमें भाग लेने से इनकार कर देगा। तो भी, कुछ सरकारों ने और विशेषकर हमारी सरकार ने राष्ट्रमंडल सम्पर्क विभाग कायम कर रखा है जबकि ब्रिटेन की सरकार ने हाल ही में इस विभाग को समाप्त कर उसे ब्रिटिश विदेश विभाग में मिला दिया है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि जहां तक ब्रिटेन का सम्बन्ध है, उसका तथाकथित राष्ट्रमंडलीय देशों के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, जहां तक ब्रिटेन की सरकार का सम्बन्ध है, ये राष्ट्र तथा अन्य विदेशी राष्ट्रों के समानस्तर पर ही है। इस विलीनीकरण पर हाल ही में प्रकाश डालते हुए सर आर्थर मैकनिल ने कहा है कि यह आवश्यक था, क्योंकि विश्व में ब्रिटेन का राजनीतिक और अन्तरराष्ट्रीय महत्व कम हो गया है। उन्होंने तो यह भी सुझाव दिया है कि ब्रिटिश विदेश सेवा के कर्मचारियों की संख्या और घटा दी जानी चाहिए, क्योंकि ब्रिटेन को अब विदेशों में इतने अधिक राजदूतों और दूतावासों की आवश्यकता नहीं है और ऐसा इसलिए कि पहले इन्हें जिन कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था वे अब प्रायः समाप्त हो चुके हैं।

भारत का हित क्या ?

जो भी हो, इसमें हमारे लिए जो सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या इस सम्बन्ध में सचमुच भारत का लाभ हुआ है ? ब्रिटेन अपने हितों की रक्षा करने में समर्थ है और इसे वह कर भी रहा है। यह देखकर कि राष्ट्रमंडलीय मामलों के लिए पृथक मन्त्रालय की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राष्ट्रमंडलीय मामले विदेशी मामलों से भिन्न नहीं है, ब्रिटिश सरकार ने, जो कि समाजवादी सरकार है, तत्परता से उसे समाप्त कर दिया है और इस प्रकार करदाताओं की बहुत बड़ी रकम बचा ली है। जो भी हो, हमारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रमंडल में इस प्रकार "रहने" से हमें क्या राजनीतिक, कूटनीतिक और आर्थिक लाभ हुआ है ? क्या यह उपयोगी रहा है और क्या इससे भारत को आर्थिक, राजनीतिक और कूटनीतिक दृष्टि से लाभ पहुंचा है ? इसी कसौटी पर इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहिए और यदि राष्ट्रमंडल के साथ हमारा सम्बन्ध अलाभकारी जान पड़े, तो इसे समाप्त कर देना चाहिए और जितनी जल्दी हम इसे समाप्त कर दें उतना ही हमारे लिए अच्छा है और अन्ततः भारत और ब्रिटेन के परस्पर सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों के लिए भी अच्छा है। यद्यपि ब्रिटेन बड़ी शक्ति नहीं है, तो भी वह एक महत्वपूर्ण देश है और उसकी भाषा तथा उसकी संस्कृति केवल भारत के लिए ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व के लिए आकर्षक बनी रहेगी। हमें चाहिए कि हम प्रभावशून्य ब्रिटेन के साथ—ऐसे ब्रिटेन के साथ जो अब साम्राज्यवादी सत्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रह गया है, पर संभवतः देसी सत्ता है, जो कल्याणकारी है और जिसका अन्तरराष्ट्रीय मामलों में प्रभाव है—सही, अच्छे और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने चाहिए। किन्तु इस प्रकार के सम्बन्ध तभी बढ़ सकते हैं जबकि हम अपने और अर्थहीन वर्तमान सम्बन्धों पर नये ढंग से विचार करें और ऐसा विशेषकर एक अस्तित्वहीन राष्ट्रमंडल में रहने के हमारे अनुभवों के आधार पर किया जाना चाहिए। केवल तभी हम ब्रिटेन के साथ अच्छे सम्बन्ध कायम रख सकेंगे।

निस्संदेह, यह इस बात के लिए उपर्युक्त स्थान नहीं है कि यहां हम ब्रिटेन तथा "राष्ट्रमंडल" के अन्य देशों के साथ पिछले बीस वर्षों में जो सम्बन्ध रहे हैं उन पर विचार करें, क्योंकि इसके लिए व्यापक दृष्टि और अधिक स्थान की आवश्यकता होगी। किन्तु मैं यह प्रयत्न करूंगा कि राष्ट्रमंडल के सदस्य के रूप में ब्रिटेन के साथ हमारे जो सम्बन्ध रहे हैं उससे मेरी दृष्टि से जो भी लाभ तथा हानि हुई है, उसकी मोटी रूपरेखा कुछ शब्दों में प्रस्तुत करूं। सर्वप्रथम, मैं यह कहना चाहूंगा कि यद्यपि हमने राष्ट्रमंडल के साथ इतनी गम्भीरतापूर्वक सम्बन्ध बनाये रखा, किन्तु ब्रिटेन के राजनेता और यहां तक कि ब्रिटिश जनता का प्रारम्भ से ही पाकिस्तान की ओर भारी झुकाव रहा और इसके कारणों से भी हममें से अधिकांश भलीभांति परिचित हैं और निश्चय ही ह्वाइट हाल के नीति निर्माता भी इसे अच्छी तरह जानते हैं। सदा से चली आयी इस धारणा के अलावा कि मुसलमान ब्रिटेन के प्रति अधिक वफादार है और वे फौजी लोग हैं जबकि हिन्दू नहीं, वे अन्य बातें भी हैं, जिनके कारण पाकिस्तान बहुपत्नी प्रथा, तानाशाही शासन व्यवस्था और प्रशासन में भ्रष्टाचार के बावजूद ब्रिटेन के जनसाधारण के मानस से पश्चिम समर्थक और ब्रिटेन का समर्थक है तथा इसलिए ब्रिटेन की जीवन प्रणाली के अधिक निकट है। ब्रिटेन की सभी सरकारों ने (यदि यहां हम एटली की सरकार को छोड़ दें) भारत की अपेक्षा पाकिस्तान का पक्ष लिया है हालांकि यह सब इस बात के बावजूद कि श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित का राजदूत के रूप में "ब्रिटेन में कार्यकाल महान् और सफल" रहा है और जिसके सम्बन्ध में किसी ने कोई पुस्तक भी लीखी है। जैसा कि १९६५ में हम देख चुके हैं, जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तब विलसन की समाजवादी सरकार ने नग्न रूप में पाकिस्तान का पक्ष लिया और जिन्हें अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों का अनुभव है, वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि भारत-पाक विवाद के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने प्रायः सदैव ही पाकिस्तान का समर्थन किया और भारत के विरुद्ध मत दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां तक भारत-पाक सम्बन्धों का प्रश्न है, भारत का राष्ट्रमंडल में रहना पूर्णतया हानिप्रद रहा है और यद्यपि आज तक भी पाकिस्तान ने अपने यहां संसदीय सरकार की स्थापना नहीं की है, तो भी वह ब्रिटेन का समर्थन प्राप्त करता

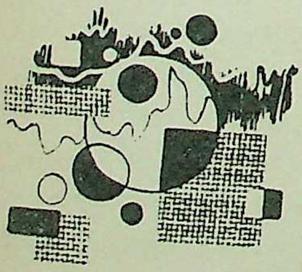

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चला जा रहा है जबकि तथाकथित राष्ट्रमंडल का कम से कम एक बुनियादी लक्ष्य यह रहा है कि उसमें सम्मिलित होने वाले सभी देशों में विधिवत् संसदीय लोकतन्त्र की स्थापना होनी चाहिए । यहां तक कि नागरिक स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और विश्वव्यापी मताधिकार के दमन से भी ब्रिटेन के पाकिस्तान के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आया है ।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहूंगा कि राष्ट्रमंडल में हमारे बने रहने से दुनिया के बड़े राष्ट्र (हाल ही में) यह सोचने लगे हैं कि हमारी स्वतन्त्रता वास्तविक नहीं है और हम अभी परीक्षणावधि से गुजर रहे हैं और ब्रिटेन अपने जिन प्रशिक्षित एजेण्टों को हमारे देश में छोड़ गया है उनके द्वारा हमारी घरेलू और विदेशी नीतियों को अभी भी नियन्त्रित किये हुए हैं। भारत-पाकिस्तान की दूसरी लड़ाई से अवश्य ही यह धारणा काफी कम हुई है, किन्तु यहां यह नहीं भूल जाना चाहिए कि तब तक अमेरिकी सरकार का विदेश विभाग, जब भी उसे भारत के प्रति अपनी नीति के बारे में सन्देह होता था, प्रायः सदैव ही, व्हाइट हाल से परामर्श लेकर अपनी नीति निर्धारित करता था । अन्य कई देशों पर भी यही बात लागू होती है और ऐसा होने का मुख्य कारण यह था कि दुनिया के अधिकांश लोग राष्ट्रमंडल के "हास्यास्पद" स्वरूप को पहचानते थे और सोचा करते थे कि राष्ट्रमंडलीय संगठनों के द्वारा ब्रिटेन अपने भूतपूर्व उपनिवेशों पर नियन्त्रण रखे हुए है । अपनी मुद्रा को भी पौण्ड स्टर्लिंग के साथ जोड़कर हमने अन्य देशों को यह सोचने का अवसर दिया कि भारत पर ब्रिटेन का आधिपत्य राष्ट्रमंडल के नाम से कायम रखा जा रहा है ।

यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि चीनियों ने जब १९६२ में भारत पर आक्रमण किया था तब उन्होंने भी ऐसा ही सोचा था । एक अत्यन्त विश्वसनीय सूत्र के अनुसार उन्होंने यह अनुमान लगाया था कि केवल ब्रिटेन ही ऐसा देश है, जो भारत के लिए आ सकता है और चूंकि पेकिंग के अधिकारियों के अनुसार ब्रिटेन सैनिक दृष्टि से नगण्य राष्ट्र रह गया था, इसलिए उन्होंने सोचा कि भारत पर आक्रमण करने में कोई खतरा नहीं है । जब अमेरिका से युद्ध सामग्री भारत को आने लगी, तो उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्होंने अमेरिकी हस्तक्षेप की कभी कल्पना नहीं की थी ।

स्वतन्त्रता की भावना का अभाव

तीसरी बात यह है कि राष्ट्रमंडल की सदस्यता और इंगलैण्ड के साथ गठबन्धन कायम रखने से हमारे लोगों में यह भावना नहीं रही कि वास्तव में हम स्वतन्त्र हैं । गांधीवादी क्रान्ति और स्वतन्त्रता की प्राप्ति ने सारे देश में बड़ी आकाक्षाएं जगा दी थीं और १९४७ में भारत में उसी प्रकार का प्रवाह था जिस प्रकार कि बोलशेविक क्रान्ति के बाद रूस में था और यदि उपलब्धि के उभरते हुए उत्साह को और भारतीय जनता के गौरव को ब्रिटिश प्रभुत्व से स्वतन्त्र रह कर काम में लिया जाता, तो राष्ट्र निर्माण का हमारा कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त सुगम हो जाता और आज इतने वर्षों की निराशा और मिथ्या श्रीगणेश के बाद जो स्थिति है उससे कहीं अधिक अच्छी होगी। लोगों के मन में यह भावना रहने देकर कि सरकार का पुराना ढांचा ही चल रहा है और केवल "गोरे साहब" के स्थान पर "काले साहब" आकर बैठ गये हैं, हमने भारतीय जागरण के उस सवाल को नष्ट कर दिया है, जिसे दुनिया के अधिकांश लोग बीसवीं शताब्दी की ऐतिहासिक घटना मानते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्र निर्माण की पहल सर्वसाधारण के हाथ से निकल कर, उस उकतायी हुई नौकरशाही के हाथ चली गयी, जिनमें न तो कोई राष्ट्रीय भावना थी और जो एक-बार पुनः सरकार के भाड़े के टट्टू की तरह काम करने लगे। जो भी हो, भारत का राष्ट्रमंडल में रहना उनके लिए अत्यन्त अनुकूल रहा, क्योंकि अंग्रेजी शासन के दिनों में उनका जो राष्ट्रविरोधी आचरण रहा था उसके सम्बन्ध में अब उन्हें स्पष्टीकरण देकर उचित सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रभावशाली हानि पक्ष के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रमंडल में रह कर हमने ब्रिटिश उपनिवेशों में रहनेवाले उन भारतीयों के प्रति अवश्य कुछ सच्ची सेवा की है, जिन्हें कम से कम, अपनी पसन्द बताने के उस कष्ट से, जो आज उन्हें करना पड़ रहा है, कुछ वर्षो का समय मिल गया। स्वतन्त्रता के प्रथम वर्षों में जब यह स्पष्ट नहीं था कि क्या ब्रिटेन को अपने उपनिवेशों से हटने के लिए बाध्य होना पड़ेगा, तब विश्व के विभिन्न भागों जैसे पूर्वी अफ्रीका, युगाण्डा, गुयाना, फिजी और मारीशस में रहने वाले भारतीय प्रवासियों को अपना काम करने का अवसर प्राप्त था, हालांकि ब्रिटेन के वहां से हटने और उनके द्वारा ऐसी आकस्मिक स्थिति के लिए कोई तैयारी न की जाने के कारण आज उन्हें निष्कासन का सामना करना पड़ रहा है, यद्यपि वे कानूनी दृष्टि से ब्रिटेन के नागरिक हैं, किन्तु फिर भी वहां लौट कर नहीं जा सकते हैं।

सत्य को पहचानें

दूसरी बात यह भी कही जा सकती है कि ब्रिटिश शासन के समय हमारा अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्क न रहने के कारण राष्ट्रमंडल में रहना आवश्यक हो गया था और यह सत्य है कि हमने इस सम्बन्ध से प्रारम्भिक दिनों में अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों और परिषदों में कुछ अन्तरराष्ट्रीय लाभ प्राप्त किया है, यद्यपि यह तथ्य कि बेनेगल नरसिंह राव ने संयुक्त राष्ट्र स्थित ब्रिटिश सदस्यों की किसी भी प्रकार की सहायता के बिना संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के पक्ष को इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया, बतलाया है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे कूटनीतिक प्रयत्नों में ब्रिटिश सहायता की बात बढ़ा-चढ़ा कर कही गयी थी।

कुछ मामूली लाभ की तुलना में, राष्ट्रमंडल में हमारे रहने से हानियां ही अधिक हुई हैं। इनमें से कुछ को मैं यहां बता चुका हूं। और भी कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताई जा सकती है, किन्तु मेरा इरादा हमारी पिछली गलतियों पर विवाद खड़ा करने का नहीं है। मैं तो अपने राजनीतिज्ञों और संसद सदस्यों का ध्यान उस नीति की विफलता की ओर आकर्षित करना चाहता हूं, जो ब्रिटेन द्वारा किसी भी सूरत में, यहां तक कि राष्ट्रमंडल के सदस्यों के साथ चले आ रहे अपने सम्बन्धों को ताक में रख कर यूरोपीय साझा बाजार में सम्मिलित होने के निर्णय से एकदम अर्थहीन हो गयी है। ब्रिटेन के साथ किसी दिन अंतिम रूप से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने की आशंका से कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों ने वैधानिक और राजनीतिक कदम उठा लिये हैं, क्योंकि वे यह अनुभव करते हैं कि राष्ट्रमंडल के नेतृत्व के साथ ब्रिटेन का साझा बाजार में प्रवेश करना असंगत है। उनका यह भी कहना है कि युद्ध के बाद राष्ट्रमंडल के बाजारों को विकसित करने का ब्रिटेन के पास असाधारण अवसर था, और यदि ब्रिटेन उसके विकास के लिए निष्ठापूर्वक और उत्साह से कार्य करता तो अब तक यह बाजार यूरोपीय साझा बाजार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन गया होता। दुर्भाग्य से, आज ब्रिटेन के पास दूरदर्शी और उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ नहीं हैं। अतः यह आशा करना व्यर्थ है कि आने वाले वर्षों में ब्रिटेन में कुछ चमत्कारपूर्ण परिवर्तन होगा। वस्तुतः इसके विपरीत, ब्रिटिश सरकार की नयीं आव्रजन नीति से यह स्पष्ट है, कि ब्रिटेन अपने डगमगाते राष्ट्रीय साधनों के कारण राष्ट्रमंडल का बोझ नही उठा सकता और इसीलिए ब्रिटेन एक द्वीप वाले देश की तरह रह कर अपने विकास और समृद्धि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहता है। केवल एक साम्राज्यवादी देश में विभिन्न जातियों के लोगों को सामान्य नागरिकता का लाभ मिल सकता है। चूंकि ब्रिटेन ने साम्राज्यवादी दृष्टिकोण को पसन्द नहीं किया है, इसलिए उसके सामने एक छोटा देश बन कर रहने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है और जैसाकि मेलकाम मगरीज ने हाल ही में 'आब्जरवर' में लिखा है, इस सचाई से ब्रिटेनवासियों को हतोत्साहित नहीं होना चाहिए, क्योंकि अन्ततः इंगलैण्ड अभी भी रहने की दृष्टि से रमणीय देश बना रहेगा, किन्तु केवल ब्रिटेनवासियों के लिए। इंगलैण्ड के इन वर्तमान और दूरगामी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि हम १९७०-८० के दशकों वाले ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्धों पर पुनर्विचार करें, क्योंकि ब्रिटेन १९६० के उत्तरार्द्ध में अपने पूर्व स्वरूप की परछाईं मात्र है और विश्व के अन्य क्षेत्रों में—उन क्षेत्रों में जहां सम्पूर्ण १९वीं शताब्दी और २०वीं शताब्दी के अधिकांश भाग में ब्रिटेन का इतना प्रचण्ड प्रभुत्व रहा है—सत्ता के ध्रुवीकरण के फलस्वरूप उसमें और अधिक बुनियादी परिवर्तन होने वाले हैं। जो भी हो, यदि हम समय रहते ब्रिटेन के साथ अपने सम्बन्धों को नियमित करने के लिए पहले से कदम नहीं उठायेंगे, तो उसमें हसे बड़ी हानि होगी, क्योंकि यह तो हम जानते ही हैं कि स्वतन्त्रता के पश्चात् स्टर्लिंग क्षेत्र में बने रहने का हमारा मूर्खतापूर्ण निर्णय, हमें कितना अधिक मंहगा पड़ा है।

० ०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशी पूंजी

(पृष्ठ ५६ का शेष)

प्रत्यक्ष प्रमाण निर्यात स्थिति का यह उदाहरण है। सन् १८५७-७२ के बीच की अवधि में देश में बने माल का निर्यात १२ प्रतिशत से घटकर ३ प्रतिशत रह गया जबकि कच्चे माल का निर्यात ३४ प्रतिशत से बढ़कर ६१.४ प्रतिशत हो गया। दस वर्ष की अवधि में ही (१८४०-५०) हमारा सूती वस्त्र व अन्य उत्पादनों का निर्यात ६२ लाख रुपये से घटकर एक लाख रुपये से भी कम रह गया। यह सब ब्रिटिश पूंजी विनियोजन के कारण ही हुआ, क्योंकि उसने देश को प्राथमिक अथवा कच्चा माल उत्पादक केन्द्र ही बनाकर छोड़ दिया। इसी में उसका भला था। श्री एच० डब्ल्यू सिंगर के शब्दों में अविकसित राष्ट्रों को औद्योगिक राष्ट्रों का कच्चा माल व खाद्यान्न निर्यातक केन्द्र बना दिया जाना औद्योगिक राष्ट्रों की पूंजी का ही परिणाम था, यह स्थिति अविकसित राष्ट्रों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रही।

भारत के मामले में इस स्थिति का एक और कुप्रभाव हानिकर व्यापारिक प्रवृत्ति थी। विश्व बाजार में हमें अपने माल का निरन्तर कम मूल्य मिल रहा था जबकि अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए ज्यादा मूल्य चुकाना पड़ रहा था। यदि हम तात्कालिक जनसंख्या का व्यावसायिक आधार पर विभाजन करें, तो यह देखेंगे कि कृषि क्षेत्र से उद्योगों की ओर कोई स्थानान्तरण न हुआ जबकि औद्योगीकरण में ऐसा होता है।

विदेशी पूंजी विनियोजकों ने कृषि को ही हमारी अर्थव्यवस्था को आधार बनाये रखने पर बल दिया। इसका मूल्य हमें अपने उद्योगों के ह्रास के रूप में ही चुकाना :नहीं पड़ा, अपितु आजीविका व प्रगति के अवसरों को भी खोना पड़ा।

सर्वविदित है कि पहले-पहले विदेशी पूंजी चाय, काफी व रबड़ बागानों तथा खानों आदि में लगी, अर्थात् उन क्षेत्रों में जो निर्यात आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साधन थे। इन्हीं क्षेत्रों में उच्च तकनीकी कुशलता व क्षमता थी और उनका उत्पादन भी अधिक था। किन्तु इस सबका आन्तरिक रूप में एकीकरण न था, अत: अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों को इनसे कोई लाभ नहीं पहुंचा।

ब्रिटिश पूंजी विनियोजन का क्या मूल्य मिला, व्यापार, उत्पादन, जहाजरानी ? वर्तमान शताब्दि के प्रारम्भिक वर्षों में हम ब्रिटेन को किसी न किसी रूय में अपनी राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत वार्षिक तक चुकाते थे। सर एम० विश्वेश्वरैया के अनुमान के अनुसार सन् १९३४ में यह राशि १ अरब ६१ करोड़ रुपये थी। अधिकारियों के पेंशन के रूप में दिया जाने वाला तथा अन्य धन इसके अलावा था।

वित्तमंत्री की सफलता की कसौटी

हमारे राजनीतिक पराभव की भी यही स्थिति है। जन साधारण का अनुभव है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व के समय में हम जिसे बुरा समझते थे, वह आज बुरा नहीं है। "स्वदेशी" के प्रति हमारा प्यार आज मिट गया है और हर भारतीय के मन में हर "आयातित वस्तु" के प्रति मोह है, भले ही वह कानूनसम्मत ढंग से आयी हो अथवा तस्करी व्यापार से। विदेशी मुद्रा के प्रति भी हमारा मोह कुछ ऐसा ही है। विदेशी सहायता की प्राप्ति (यदि मांगना नहीं) के लिए हर वर्ष विश्व यात्रा पर निकलना हमारे वित्तमंत्री का प्रथम कर्तव्य-सा बन गया है। वित्तमंत्री की योग्यता का मापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अब यही बनता जा रहा है कि वह कितनी विदेशी पूंजी जुटा सकते हैं जबकि वास्तविक मापदण्ड यह है कि वह देश की अर्थव्यवस्था को दृढ़ करने, विकास-पथ प्रशस्त करने तथा मूल्य-स्थिरता बनाये रखने में कितने सफल रहे हैं। बड़े देशों से प्राप्त ऋणों पर ही नहीं, मामूली श्रेणी के राज्यों से भी ऋण लेते हम प्रसन्न हैं।

उक्त विचारधारा का ही यह परिणाम है कि हम आत्मनिर्भर आयोजन अथवा अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में विदेशी मुद्रा की निर्भरता को शनैः शनैः घटाने की बजाय निरन्तर बढ़ाते जा रहे हैं। हर पंचवर्षीय योजना के बाद विदेशी मुद्रा की आवश्यकता बढ़ी है। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रथम पंचवर्षीय योजना में विदेशी सहायता १० प्रतिशत, दूसरी में २४ प्रतिशत तथा तीसरी में ३९ प्रतिशत रही। चौथी योजना में इसका अनुमान २९.४ प्रतिशत रखा गया है। यही कारण है "योजना में हमारे आयोजन को सहायता-निर्भर की संज्ञा दी गयी है और साथ ही यह चेतावनी दी गयी है कि विदेशी सहायता को हम "बैसाखी" के रूप में स्वीकारें "स्ट्रैचर" के रूप में नहीं। यह चेतावनी सभवतः इसीलिए है कि हम विदेशी सहायता का उपयोग "स्ट्रैचर" के रूप में ही कर रहे हैं। यदि ऐसा न होता, तो चौथी योजना को स्थगित न करना पड़ता। कटु सत्य यह है कि विदेशी सहायता बड़े अविश्वसनीय ढंग से काम कर रही है। हाल के वर्षों में यह जिस प्रकार मिली है, वह भी ध्यान देने योग्य है। सन् ६६-६७ में यह १४ अरब ५५ करोड़ रुपये थी, सन् ६७-६८ में यह ७ अरब ३६ करोड़ ६ लाख रुपये और अप्रैल से सितम्बर १९६८ तक यह केवल ४ अरब २१ करोड़ रुपये रही। सहायता देनेवाले राष्ट्रों की नियति पर शक उचित नहीं, अपनी थैली का मुंह कसते जाने के उनके पास अनेक तर्क हो सकते हैं।

विदेशी सहायता का सही उपयोग तभी सकता है जब कोई देश अपने साधनों का भी ठीक व व्यवस्थित ढंग से उपयोग करे।

पी० एल० ४८० कोष के अधीन लगभग १० अरब रुपये का संग्रह एक अनुपम उदाहरण है। मुद्रा प्रसार तथा हमारी अर्थव्यवस्था पर इसके कुप्रभाव से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का चिंतित होना स्वाभाविक है। सब कुछ कहने का सार यही है कि विदेशी सहायता के मामले में अब हम चरम बिन्दु पर आ पहुंचे हैं। समय की मांग है कि हम सब स्थिति पर विचार करें और अपनी विकास नीति का फिर से निर्धारण करें।

* * *

With Best Compliments from :

Fairfield Manufacturing Co.,

Hanuman Building, Tambakanta,
Pydhonie, BOMBAY-3.

Phones : Off. 324323-323758
Res. 475464

Manufacturers of :
All Types of Spring Washers, Shakeproof Washers,
Circlips and Precision Strip Forms.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With Best Compliments

from

Chinai And Company
Private Limited

79-Masjid Bunder Road,

Bombay-3.

With Best Compliments

from :

Zenith Steel Pipes Limited

Regd. Office :
Moti. Mahal
195, Churchgate Reclmn
Bombay-20 BR

Telephone : 294516/294445/294684

Telegrams : ZENPIPES
Telex : 458

Factory :
Khopoli, Dist. Kolaba
(Maharashtra)

Telephones : 21, 22 and 24

Telegrams : ZENPIPES

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

READ

ORGANISER

The Capital Weekly From The Capital

Sanskriti Mandir, Jhandewala

NEW DELHI

Popular Builders & Plumbers

* Water supply
* Drainage
* Plumbing and Sanitation

Tele :
333923

5 A, Sarvoday Nagar,
Panjrapole Main Road
Bombay-4.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With Best Compliments from :

Mohamedali R. Chawan

Building Contractors

Teli Chawl, Agra Road

Naupada, THANA.

Grams : "Vijoobal" Bombay-22

Vijaya Construction Co.

Builders & Contractors

Business Address :
Regina Pacis Compound,
Opp. Bycula Police Station,
Love Lane, Byculla,
BOMBAY-27.

Regd. Office :
"Balkrishna" 2nd Floor
Block No. 18, Plot No, 98, (East)
Sion, Matunga Estate,
BOMBAY-22.

Tele. (Office : 315557
(Res. : 355002

With Best Compliments from :

Chhota Lal & Co.

Builders & Sanitary Contractors.

89, Princess Street,

BOMBAY-2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Everything that you look for in fabrics: exquisite design, appealing shades, immaculate fall, wearability, washability, durability. You have it all in POLYCOT, India's most up-to-date Fashion Fabrics. Wear them. You'll never want any other fabrics.

POLYCOT
- SUITINGS,
- SHIRTINGS,
- SAREES,
- DRESS MATERIALS

Jiyajeerao
Cotton Mills Ltd.
Gwalior (M.P.)

JIYAJEERAO'S
POLYCOT
INDIA'S MOST UP-TO-DATE
POLYSTER/COTTON
BLENDED FABRICS,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GRASIM

STAPLE FIBRE A SUPPLEMENT TO COTTON AND OTHER FIBRES

Among Indian technological achievements Gwalior Rayon's success in producing Rayon Grade Pulp from indigenous raw materials without any foreign aid or collaboration has, perhaps, been the most remarkable. The staple fibre produced from the pulp has been a boon to the hard-pressed textile industry which was deprived of valuable raw materials when vast areas of cotton-growing land were lost to Pakistan as a result of Partition.

Grasim Staple Fibre is unique in many respects, and is, in effect, a supplement to all natural fibres including cotton, wool, silk, jute, as well as to synthetic fibres. When blended or mixed with other fibres, it increases the usefulness of the resultant fabrics, making them cooler, softer, and more comfortable while at the same time helping to lower costs.

Today Gwalior Rayon contributes substantially to the national economy. It keeps hundreds of textile mills busy, gives employment to thousands of people, helps clothe lakhs more, saves crores of rupees in foreign exchange, contributes handsomely and in ever-increasing amounts to the national exchequer—these are just a few of the calculable benefits.

Besides Rayon Grade Pulp and Staple Fibre, Gwalior Rayon also produces high quality fabrics and fabricates its own machinery and equipment.

As the needs of the nation for the basic necessities of life are constantly growing, Gwalior Rayon, conscious of its responsibilities, has already made plans to expand its production. It is the constant endeavour of the Company to serve the country to its utmost ability.

SAS-GR 26 A

THE GWALIOR RAYON SILK MANUFACTURING (WVG.) CO. LTD.

Birlagram, Nagda

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HINDALCO

—India's Premier Aluminium Plant is an Outstanding Example of Progress through Efficient Management!

Impressive as has been the performance of the wide and varied list of industries under Birla management, the performance of Hindalco is nothing if not phenomenal. Established in 1960 in collaboration with Kaiser of U.S.A., the unit produced its first ingot in the record time of 11 months. Its initial capacity of 20,000 tonnes a year was doubled to 40,000 tonnes in November, 1965, which again will be doubled to 120,000 tonnes in the next few years. These successive increases represent the fastest expansion rate for the industry in any part of the world!

Aluminium is a strategic metal in that it can substitute for non-ferrous metals like copper, zinc and lead, all of which have to be imported into the country involving a heavy expenditure of foreign exchange. Hindalco's present output of 60,000 tonnes represents a foreign exchange saving of about U.S.$33.07 million. This does not take into reckoning the value of fabricated items.

The Company contributes handsomely to the national exchequer, the figure for 1966-67 being Rs. 17·0 million in duties alone to the Central Government. With the recent increase in duties, the figure for 1967-68 is expected to soar to Rs. 32·0 million! Hindalco provides direct employment to 3,500 people, while more than 1,000 are employed by its subsidiaries, its stockists and its distributors. A further 3,000 people were employed by the Company's contractors and sub-contractors during construction.

With the prominent role aluminium plays in a large number of industries, particularly in the electrical industry, Hindalco has a bright future not only in India, but in the whole of South-East Asia.

HINDUSTAN ALUMINIUM CORPORATION
Renukoot, Mirzapur (India)

SAS HA 8

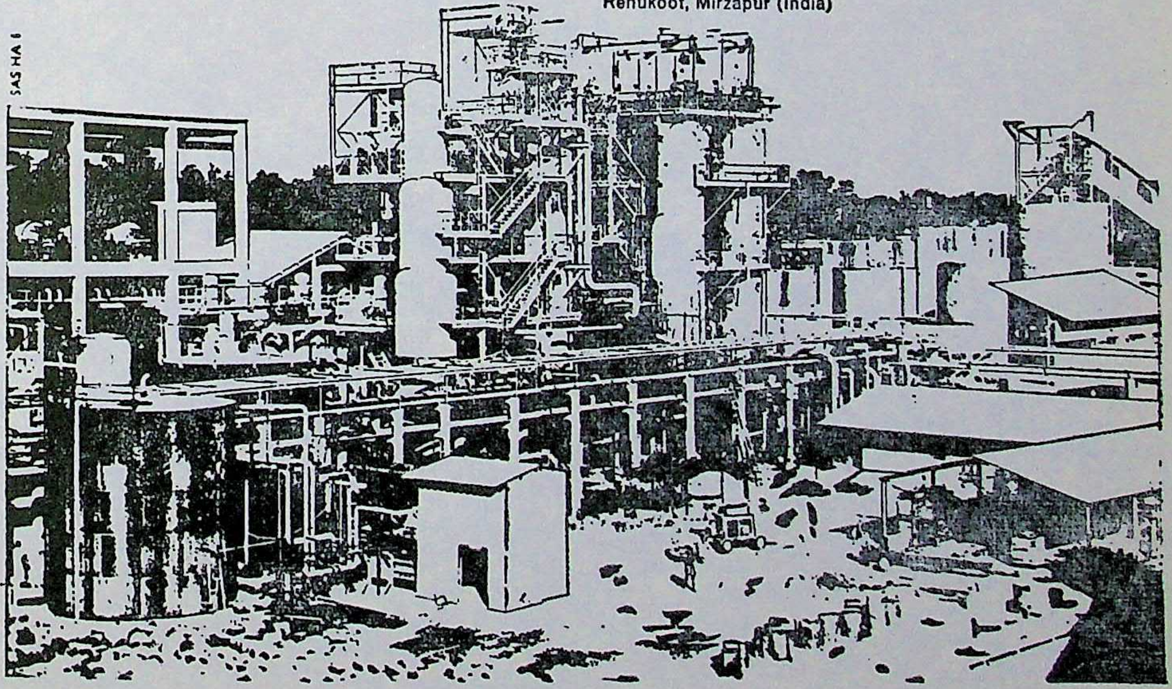

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

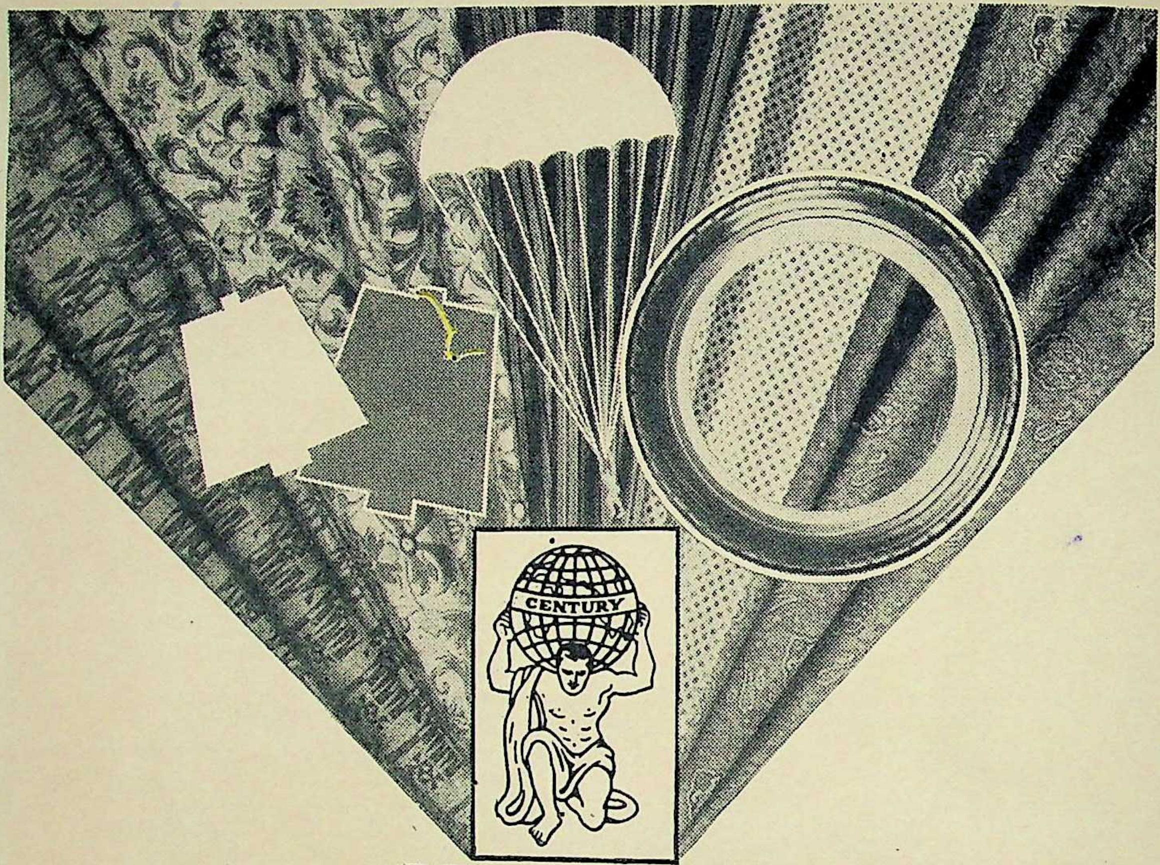

CENTURY OF PROGRESS

VIGOUR OF A 70-YEAR COMPANY

Century Spinning and Manufacturing Company Limited was established in 1897. It was growing steadily as any old, established company normally does; its sole activity consisted of manufacturing cotton textiles. In 1951 the Company came under the management of the House of Birlas. Hereon, the Company's rise has been meteoric, its production many-faceted. Besides quality textile goods, the Company today produces rayon filament yarn, tyre cord yarn, caustic soda, sulphuric acids and other chemicals. Immediate plans include the manufacture of nylon yarn and seamless steel pipes.

The progress of Century's growth in the last decade has been phenomenal. In 1957 there were only 2661 shareholders; in 1966, 12,111. In the same period, the number of employees rose from 14,950 to 17,279; Foreign Exchange saved, from Rs. 72.55 lakhs to Rs. 740.23 lakhs.

Notwithstanding the recent economic setback which the country has suffered, Century looks ahead with abounding confidence to the future, and hopes to serve the country and its people with greater zeal, and strive, by every means at its command, to bring nearer the day of national self-sufficiency.

CENTURY SPINNING & MANUFACTURING CO. LTD.

BOMBAY (INDIA)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078895

WITH BEST COMPLIMENTS OF

THE AMBIKA SILK MILLS CO. LTD.

11-12, Haines Road, Mahaluxmi

BOMBAY-13

Manufacturers of :

SYNTHETIC SHIRTINGS □ SUITINGS & DRESS MATERIALS

WITH

BEST

COMPLIMENTS

OF

THE RAGHUVANSHI MILLS LIMITED

11-12, Haines Road, Mahaluxmi

BOMBAY-13

Manufacturers of :

COTTON AND SYNTHETIC YARNS, SYNTHETIC FABRIC

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

■ राजधानी दिल्ली से प्रकाशित

■ स्व० पं० दीनदयाल उपाध्याय द्वारा संस्थापित

■ हिन्दी का सबसे पुराना एवं लोकप्रिय समाचार साप्ताहिक

"पांचजन्य"

हर मंगल को देश के कोने-कोने में पांच लाख पाठक उत्सुकतापूर्वक जिसकी प्रतीक्षा करते हैं।

क्यों ?

इसलिये कि

- □ पांचजन्य राष्ट्रीय चेतना एवं लोकतन्त्र का एक सशक्त एवं निर्भीक प्रहरी है।
- □ यह बौद्धिक विलास की वस्तु नहीं, एक चिन्गारी है, एक तड़प है जो प्रगति का, परिवर्तन का सन्देश लेकर आती है।
- □ उसका प्रत्येक शब्द राष्ट्रभक्ति एवं नैतिक बल के संस्कारों को जगाने वाला है।
- □ उसका प्रत्येक स्तम्भ समृद्ध है और विश्व तथा राष्ट्र की प्रत्येक ज्वलन्त समस्या पर विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रकाश डालता है।
- □ रमते राम की डायरी के चुटीले व्यंग्य, 'जवाब हाजिर हैं' में बीरबल की कलम से आपके ही प्रश्नों के उत्तर आपके रोम रोम को पुलकित कर देते हैं।

■ 'पांचजन्य' के ग्राहक बनना राष्ट्रभक्ति की दीक्षा लेना है।

■ पांचजन्य के नये ग्राहक बनाना राष्ट्र-यज्ञ को आगे बढ़ाना है।

वार्षिक शुल्क	:	१८ रु०	[illegible]पक 'पांचजन्य'
अर्ध वार्षिक	:	१० रु०	संस्कृति मन्दिर,
एक प्रति		[illegible] पैसे	[illegible],
			[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1998-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar